जुलाई - सितंबर 1998

वर्ष : 30 ✲ अंक : 3

वैज्ञानिक

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद की पत्रिका

भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के सौजन्य से प्रकाशित

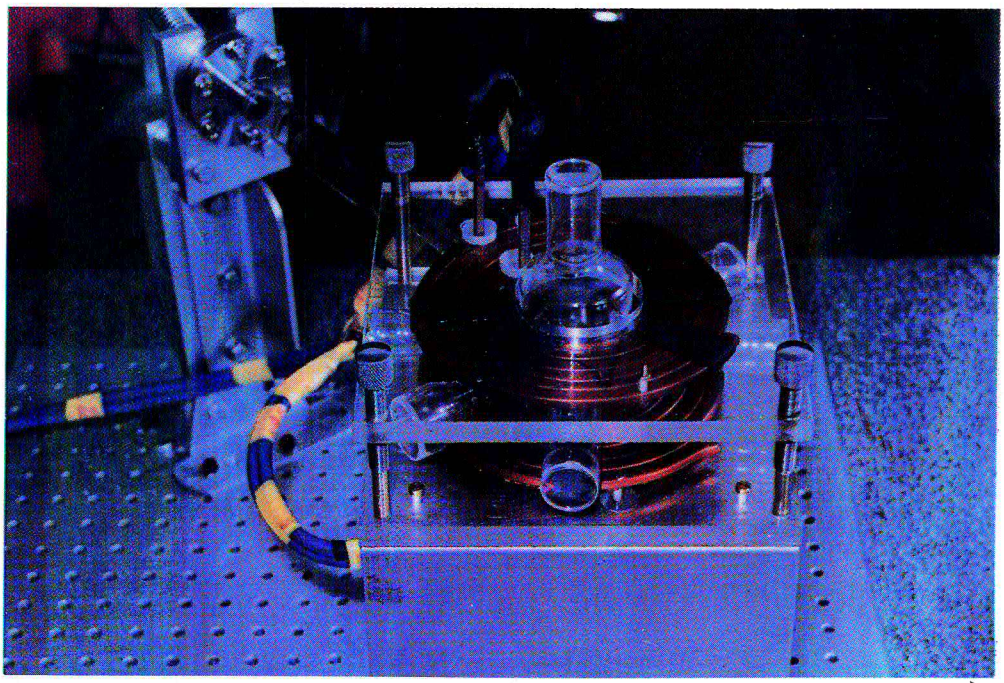

भा प अ केंद्र में विकासाधीन लेसर शीतलन सुविधा का एक भाग

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद

परिषद हिंदी में वैज्ञानिक साहित्य के सृजन व प्रचार हेतु नियमित रूप से त्रैमासिक पत्रिका "वैज्ञानिक" का प्रकाशन, विज्ञान गोष्ठियों, वार्ताओं एवं अखिल भारतीय विज्ञान लेख प्रतियोगिता का आयोजन करती है।

परिषद की सदस्यता एवं "वैज्ञानिक" पत्रिका का शुल्क इस प्रकार है :

परिषद सदस्यता (रु. में)				वैज्ञानिक शुल्क (रु. में)	
	एक वर्ष	आजीवन	संरक्षक		एक वर्ष
व्यक्तिगत	50	400	5000	व्यक्तिगत	50
संस्थागत	100	1000		संस्थागत	100

- "वैज्ञानिक" पत्रिका की कोई आजीवन सदस्यता / शुल्क नहीं है।
- वर्तमान नियमानुसार परिषद के सदस्यों को "वैज्ञानिक" नि:शुल्क भेजी जाती है।
- सभी शुल्क **हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद** के नाम से केवल **डिमांड ड्राफ्ट (मुंबई)** द्वारा ही भेजें। **मुंबई** से बाहर के चैक, मनीआर्डर एवं पोस्टल आर्डर द्वारा भेजा शुल्क स्वीकार नहीं होगा।
- कृपया शुल्क के साथ अपना निजी विवरण इस पत्रिका में दिये गये आवेदन पत्र के प्रारूप के अनुसार भेजें।
- संरक्षक सदस्य, यदि चाहें तो, उनका एक विज्ञापन प्रतिवर्ष "वैज्ञानिक" में नि:शुल्क छापा जा सकता है।

-: *"वैज्ञानिक"* में विज्ञापन :-

हिंदी में प्रकाशित होने वाली विज्ञान पत्रिकाओं में "वैज्ञानिक" अग्रणी है। देश के सभी मुख्य वैज्ञानिक संस्थान इसके ग्राहक हैं। इस पत्रिका में आपके विज्ञापन आमंत्रित हैं। पूरे पृष्ठ की छपाई का आकार 16 सेमी x 21 सेमी है।

विज्ञापन की दरें (प्रति अंक)

अंतिम आवरण	: रु. 2,500/-	पूरा पृष्ठ	: रु. 1,500/-
दूसरा/तीसरा आवरण (अंदर)	: रु. 2,000/-	आधा पृष्ठ	: रु. 800/-

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता - 1998

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद एवं राजभाषा कार्यान्वयन समिति (भा. प. अ. केंद्र) के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता हेतु प्रविष्टियां आमंत्रित हैं। लेख में किसी भी वैज्ञानिक विषय पर मौलिक एवं आधुनिक जानकारी होनी चाहिए। लेख का अप्रकाशित होना अनिवार्य है। **मूल्यांकन में नवीनतम जानकारी के साथ साथ अच्छे रेखाचित्रों/फोटोग्राफ, तालिकाओं इत्यादि को समुचित महत्व दिया जाता है।** अत: चित्रों को अलग से सफेद कागज/ट्रेसिंग पेपर पर काली रोशनाई (इंडिया इंक) से बनायें। फोटोग्राफ ब्लैक एंड व्हाइट हों तो उचित रहेगा। इन्हें लेख के अंत में संलग्न करें। नीचे दिये गये पते पर कृपया दो टंकित अथवा स्पष्ट हस्तलिखित प्रतियां (लगभग 3000-4000 शब्द) भेजें।

पुरस्कार : प्रथम - रु. 2000/=, द्वितीय - रु. 1500/=, तृतीय - रु. 750/=

अंतिम तिथि : 15 जनवरी 1999

इसके अतिरिक्त पांच प्रोत्साहन पुरस्कार एवं अहिंदी भाषी प्रतियोगियों को दो विशेष पुरस्कार, प्रत्येक रु 500/- के दिये जायेंगे। अत: अपनी मातृभाषा का स्पष्ट उल्लेख करें।

विशेष : पुरस्कृत रचनाएं "वैज्ञानिक" की संपत्ति होंगी। "वैज्ञानिक" पत्रिका से संबंधित पदाधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकेंगे।

प्रविष्टियां भेजने का पता :

श्री इंद्र कुमार शर्मा, प्रतियोगिता संयोजक एवं व्यवस्थापक "वैज्ञानिक", पदार्थ संसाधन प्रभाग (MPD),
भा. प. अ. केंद्र (BARC), मुंबई 400 085

अ नु क्र म णि का

वैज्ञानिक

वर्ष 30 अंक 3

जुलाई - सितंबर 1998

: व्यवस्थापन मंडल :

श्री गोरा चक्रवर्ती - संयोजक

डॉ. अशोक कुमार सूरी
श्री राम अवतार अग्रवाल
डॉ. सतीश कुमार गुप्ता
श्री कुलवंत सिंह
श्री राजेश कुमार

: संपादन मंडल :

डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल - संयोजक

श्री हरिओम मित्तल
डॉ. राज नारायण पांडेय
डॉ. भूपेंद्र सिह तोमर
डॉ. कैलाश चंद्र भल्ला

वार्षिक शुल्क

संस्थागत	व्यक्तिगत
100 रु.	50 रु.

कार्यालय

"वैज्ञानिक", हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद,
सूचना प्रभाग, सेन्ट्रल कांप्लेक्स
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र
मुंबई - 400 085

संपादकीय 3

लेख

1. भारतीय चिकित्सा में खनिजों का उपयोग 5
   - डॉ. अवधेश शर्मा
2. होम्योपैथी द्वारा गहन शिरा घनास्रता का उपचार 9
   - समीर कुमार जिंदल
3. मेंढक एक उपयोगी जंतु 13
   - डॉ. राज किशोर
4. पेटेन्ट नियम : एक अहम् आवश्यकता 16
   - कृष्ण प्रकाश त्रिपाठी
5. विज्ञान की शिक्षा एवं बच्चों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण 19
   - डॉ. रामप्रवेश भगत

नोबेल पुरस्कार : किसे और क्यों ?

लेसर-शीतलन प्रणाली : परिचय तथा संकल्पना 23
- डॉ. बी. एन. जगताप एवं आसावरी मराठे

विज्ञान - कहानी

जीवाश्मों में निहित मेरी पहचान : डायनासौर की आत्मकथा 32
- कु. स्मिता चटर्जी

टिप्पणियां

1. अपशिष्ट जल के परिष्करण द्वारा पर्यावरण संरक्षण 35
   - भगतराम नौटियाल
2. कितने उपयोगी हैं - मैग्नीशियम एवं मैंगनीज 36
   - डॉ. डी. डी. ओझा
3. उत्तराखंड की पादप विविधता : एक परिदृष्य 38
   - डॉ. बी. पी. नौटियाल एवं डॉ. निर्मला पांडे
4. सोयाबीन एक चमत्कारी खाद्य 41
   - एन. के. बोहरा

● "वैज्ञानिक" में लेखकों द्वारा व्यक्त विचारों से संपादन मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है ।

● "वैज्ञानिक" में प्रकाशित समस्त सामग्री के सर्वाधिकार हिं. वि. सा. परिषद के पास सुरक्षित हैं ।

● "वैज्ञानिक" एवं हिं. वि. सा. परिषद से संबंधित सभी विवादों का निर्णय मुंबई के न्यायालय में ही होगा ।

"वैज्ञानिक" का शुल्क

पाठकों से अनुरोध है कि यदि उनका 'वैज्ञानिक' का शुल्क समाप्त हो गया हो, तो उसे भेज कर नवीनीकरण करा लें । यदि संभव हो तो आजीवन सदस्य बन जायें ।

5. प्रदूषण का एक नया स्वरूप : इलेक्ट्रोप्रदूषण 43
- डॉ. गणेश कुमार पाठक

6. वैम एक उपयोगी जैव उर्वरक 44
- नीलम वर्मा एवं डॉ. के. के. श्रीवास्तव

विज्ञान समाचार

● भा. प. अ. केंद्र से 46

● अन्य समाचार 48

बाल विज्ञान

1. चंद्रमा की गुरुत्वाकर्षण शक्ति 54
2. दूसरे सौरमंडल का जन्म 54
3. मानव नेत्र कार्य कैसे करता है ? 55

वार्षिक प्रतिवेदन (1997-98)

हिंदी साहित्य परिषद (भा. प. अ. केंद्र) 58

कुछ फूल : कुछ कांटे 62

आजीवन सदस्यता / "वैज्ञानिक" ग्राहकों के लिए आवेदन पत्र का प्रारूप

डॉ. सतीश कुमार गुप्ता

कोषाध्यक्ष, हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद, रिएक्टर सुरक्षा प्रभाग, भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, मुंबई 400 085.

प्रिय महोदय

मैं, हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद (भापअ केंद्र, मुंबई) का आजीवन सदस्य / "वैज्ञानिक" पत्रिका का ग्राहक बनने का इच्छुक हूं । मेरा निजी विवरण एवं शुल्क संबंधित विवरण निम्नलिखित है :

नाम (हिंदी में) :_____ (अंग्रेजी में) :_____

पता (हिंदी में) :_____ (अंग्रेजी में) :_____

_____ _____

_____ _____

व्यवसाय :_____ _____

हिंदी की पात्रता :_____ प्रवीणता _____

(Qualification) (Specialisation)

डिमांड ड्राफ्ट सं. . . . . .दिनांक. . . . . बैंक . . . . . .रु. . . . . .

दिनांक : हस्ताक्षर :

***शुल्क 'हिंदी विज्ञान साहित्य परीषद' के नाम केवल डिमांड ड्राफ्ट (मुंबई) द्वारा ही कोषाध्यक्ष को भेजें ।**

संपादकीय :

आर्थिक प्रतिबंधों के परिप्रेक्ष्य में स्वदेशी तकनीक

विकसित राष्ट्रों द्वारा विकासशील राष्ट्रों पर अपना प्रभुत्व बनाये रखने के लिए आर्थिक प्रतिबंधों को लगाना एक आम बात है। मई 1998 में भारत तथा पाकिस्तान द्वारा अपनी तकनीकी क्षमता की जांच हेतु जब कुछ परमाणु परीक्षण किये गये तो विकसित राष्ट्रों ने तत्काल आर्थिक प्रतिबंधों का एलान कर दिया। इसके तहत वैज्ञानिक उपकरणों तथा कई प्रकार के पदार्थों को भारत को देने पर रोक लगा दी गयी। यहां तक कि वैज्ञानिकों को अपने शोध पत्रों को अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में प्रस्तुत करने के लिए वहां जाने की अनुमति देने से भी इन्कार कर दिया गया। यह पहला अवसर नहीं था जब ऐसा हुआ। वर्ष 1990 में भी भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रमों के लिए, हालांकि भारत और रूस के बीच क्रायोजनिक बूस्टर इंजनों की तकनीकी हस्तांतरण के लिए एक समझौता हुआ था, परंतु एक नाजुक मोड़ पर अमरीका और रूस के बीच हुए राजनैतिक समझौते के आधार पर रूस उस तकनीक को भारत को देने में हिचकिचाने लगा। निसंदेह विज्ञान की प्रगति के लिए यह एक स्वस्थ दृष्टिकोण नहीं कहा जा सकता है।

अचानक आर्थिक प्रतिबंधों के लगाये जाने सीधा प्रभाव राष्ट्र की उन परियोजनाओं पर पड़ता है जिन्हें इन पदार्थों तथा उपकरणों की उपलब्धता को ध्यान में रख कर तैयार किया गया हो। प्रकृति में विभिन्न प्राकृतिक संसाधनों तथा पदार्थों का वितरण एक सा नहीं है इसलिए हर राष्ट्र को किसी न किसी चीज के लिए दूसरे पर निर्भर रहना पड़ता है। हो सकता है यह प्रकृति का संसार के लोगों को एक दूसरे के प्रति उदारता का भाव बनाये रखने का अपना एक अंदाज हो। फिर भी मानव द्वारा तथाकथित सभ्यता के विकास की आड़ में प्रकृति के तौर तरीकों से खिलवाड़ करने के प्रयास किये जाते रहे हैं जिनका प्रकृति विभिन्न प्राकृतिक विपदाओं के रूप में अपना रोष जताती रहती है तथा मानव को उसकी स्वार्थपरत प्रवृत्ति की ओर सचेत करती है।

विकसित राष्ट्रों की इस प्रवृत्ति से मुकाबला करने के लिए तथा प्रतियोगितापूर्ण विश्व में प्रगति के लिए आवश्यक है कि हर राष्ट्र अपने सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश के अनुकूल प्रौद्योगिकियों का विकास करे। इस संबंध में पहले भी हमने कुछ विचार रखे थे ("वैज्ञानिक" अप्रैल-जून 1992 तथा जुलाई-सितंबर 1993 अंक 24:2, तथा 25:3)। आज के संदर्भ में तकनीकी विकास कार्यक्रम के अंतर्गत स्वदेशी तकनीकों को प्राथमिकता देना और भी जरूरी हो गया है। जब हम वैज्ञानिक तथा तकनीकी दृष्टि से मजबूत हो जायेंगे तो विकसित राष्ट्रों के समय-समय पर लगाये जाने वाले आर्थिक प्रतिबंधों जैसे हथकंडों से विकासशील राष्टों की राष्ट्रीय परियोजनाओं पर कम प्रभाव पड़ेगा। इस परिप्रेक्ष्य में चीन, जापान, दक्षिण कोरिया इत्यादि राष्ट्रों के उदाहरण सार्थक हैं। इन एशियाई देशों ने वैज्ञानिक तथा तकनीकी दृष्टि से इतनी अधिक प्रगति कर ली है कि अमरीका तथा कई अन्य यूरोपीय देश इनसे सहज दोस्ती का संबंध रखना चाहते हैं।

विकासशील राष्ट्रों में वैज्ञानिक तथा तकनीकी विकास कार्यों के लिए समुचित प्रोत्साहन तथा आर्थिक निवेश की परम आवश्यकता है। हालांकि सरकार को इस दिशा में सहयोग देना जरूरी है क्योंकि राष्ट्रीय संसाधनों का नियंत्रण उनके पास रहता है, फिर भी हम सदैव असीमित रूप में उस ओर नहीं देख सकते हैं। सरकार तो राष्ट्रीय आय का उनकी प्राथमिकता के आधार पर कुछ भाग ही नियत कर सकती है। अधिक संसाधनों को जुटाने के लिए अन्य प्रयास आवश्यक बन जाते हैं। ब्रिटिश साइंस मैगनीन 'नेचर' के संपादक डॉ. फिलिप कैंपबेल ने भारतीय साइंस कांग्रेस में 'साइंस कम्यूनिकेशन तथा पब्लिशिंग' विषय पर अपनी वार्ता के दौरान यह कहा कि विज्ञान के लिए सहायता बढ़ नहीं रही है और भारत भी इसमें कोई अपवाद नहीं है। सरकारी सहायता की एक सीमा को देखते हुए आज निजी क्षेत्रों द्वारा अनुसंधान कार्यों में निवेश के लिए आगे आने की अत्यंत आवश्यकता है। इससे न केवल वैज्ञानिक तथा तकनीकी विकास को बल मिलेगा, बल्कि निवेश कर्ताओं को भी बड़ा लाभ होगा। इससे निसंदेह राष्ट्र

का गौरव बढ़ेगा ।

उत्पाद अनुसंधान कार्यों में निजी क्षेत्रों द्वारा लगाये गये निवेश से सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि आवश्यक उत्पादों में निरंतर सुधार की प्रक्रिया प्रारंभ हो जायेगी तथा वे अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतियोगी बन सकेंगें । यही नहीं नयी तथा संशोधित प्रक्रियाओं / यंत्रीकरण से उत्पादन में भी बढ़ोत्तरी होगी । दूसरी ओर अनुप्रायोगिक (एप्लाइड) शोध कार्यों के उद्देश्य निर्दिष्ट हो जायेंगे । अन्यथा हो यह रहा है कि राष्ट्रीय संस्थानों और केंद्रों में विकसित तकनीकी का सीधा लाभ न तो जन साधारण को मिल पाता है और न ही उद्योगों को ।

इसमें कोई दो राय नहीं हैं कि सरकारी क्षेत्रों तथा निजी क्षेत्रों में कार्य संस्कृति अलग-अलग होती है । सबसे अहम बात यह है कि निजी क्षेत्रों में जिम्मेदारी का अहसास रहता है तथा काम की जबावदेही व्यक्ति विशेष पर स्पष्ट तौर पर निर्दिष्ट होती है अत: जो कार्य किया जाता है उसमें गंभीरता का पुट अधिक रहता है । सरकारी प्रतिष्ठानों में जबाबदारी सीधी न होने के कारण कार्य प्रवृत्ति में ढीलापन आ जाता है जिसका सीधा प्रभाव शोध की गति तथा उसकी गुणता पर पड़ता है । सरकारी क्षेत्र में अफसरवादिता अधिक होने से परियोजनाओं के कार्यान्वय में अत्यधिक विलंब होता जाता है, वैज्ञानिकों तथा प्रौद्योगविदों की बुद्धिमता एवं कार्यक्षमतांओं का सही और पूर्ण उपयोग नहीं हो पाता है । फलस्वरूप वेतन, इन्फास्ट्रक्चर की लागत, मुद्रास्फीति के कारण परियोजना की लागत कई गुना बढ़ जाती है । इसका सीधा प्रभाव जन साधारण पर ही पड़ता है ।

एक और बात जिसे प्राथमिकता मिलनी चाहिए वह यह है कि देश में विकसित तकनीकों / पदार्थों / यंत्रों का अधिकाधिक प्रयोग होना चाहिए । परिष्कृत उपकरणों का आयात विशेष परिस्थितियों में ही उचित रहेगा । यह आवश्यक नहीं कि हर शोध और विकास कार्य के लिए अत्यंत परिष्कृत उपकरण पर ही मापन किया जाय । जबकि आवश्यक यह है कि उपलब्ध आंकड़ों का बुद्धिमता से विश्लेषण और उपयोग हो । यदि प्रणालियों तथा तकनीकों का विकास राष्ट्र में उपलब्ध और विकसित यंत्रीकरण को ध्यान में रखकर किया जाय तो अनुरक्षण जैसे महत्वपूर्ण कार्य के लिए हमें विदेश की ओर नहीं देखना पड़ेगा । यह एक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है कि शोध संस्थानों तथा केंद्रों में कई परिष्कृत तथा अतिपरिष्कृत उपकरण कुछ ऐसे घटकों, संसूचकों, जानकारियों के अभाव में निष्क्रिय पड़े हैं जिनके लिए आज प्रतिबंध लग गये हैं । उल्लेखनीय है कि इन उपकरणों पर कई हजार करोड़ रुपयों का व्यय हुआ होगा । हो सकता है कि स्वदेशी तकनीकी या संयंत्र में वे सभी खूबियां न हों जो एक परिष्कृत आयातित उपकरण में हों, फिर भी स्वदेशी तकनीकी तथा यंत्र / पदार्थ को अधिक महत्व मिलना चाहिए क्योंकि किसी भी विकास कार्य में 80-90 प्रतिशत की सफलता की स्थिति वैज्ञानिक और इंजीनियर की सही सोच, उत्कृष्ट बुद्धिमता, उसकी योजना तथा लगन पर निर्भर करता है । केवल इसलिए कि एक परिष्कृत क्षमताओं वाला उपकरण उपलब्ध है, हम उस पर मापन करके अपने आंकड़ों को श्रेष्ठ बताने का प्रयास करते हैं । यह एक अच्छी प्रवृत्ति नहीं कही जा सकती है । इसलिए आवश्यकता है राष्ट्रीय प्रेम की भावना तथा स्वार्थ परत मानसिकता में बदलाव ।

अभी तक भारत में निजी क्षेत्रों ने विज्ञान तथा तकनीकी से संबंधित शोध कार्यों में अधिक रुचि नहीं दिखायी है जबकि विकसित राष्ट्रों में अधिकांश तकनीकी शोध कार्यों को औद्योगिक प्रतिष्ठानों द्वारा सहायता मिलती है । इस कार्य को करने के लिए जो अनुदान मिलता है उसकी अवधि निश्चित होती है तथा उद्देश्य एकदम निर्दिष्ट । सही समय पर इन परियोजनाओं की समीक्षा कर आगे सहायता देना अथवा नहीं देना निर्भर करता है । सरकारी पद्धति के विपरीत यदि आवश्यक समझा गया तो कार्यक्रम को बंद करने में भी नहीं झिझका जाता है । इससे परियोजना से जुड़े सभी सहकर्मी चाहे वैज्ञानिक हों, इंजीनियर हों, पोस्ट डॉक्टरल फैलो अथवा शोध विद्यार्थी हों, सभी की कार्य के प्रति निष्ठा बनी रहती है और जब सबकी बुद्धिमता, तथा उनके प्रयास एकजुट होकर काम करेंगे तो सफलता मिलने में संदेह नहीं रहता ।

(शेष भाग कृपया पृष्ठ -61 पर देखें)

भारतीय चिकित्सा में खनिजों का उपयोग

डॉ. अवधेश शर्मा (वैज्ञानिक),
केंद्रीय ईंधन अनुसंधान संस्थान,
बिलासपुर इकाई, मुंगेली रोड,
पोस्ट बॉक्स - 41, बिलासपुर - 495 001

भारतीय चिकित्सा में खनिजों का उपयोग प्राचीन काल से ही होता रहा है। चरक संहिता, सिद्धयोग, चक्रदत्ता, रस रत्नाकर, रस हृदय आदि ग्रंथों में खनिजों के औषधीय उपयोग का विवरण मिलता है। खनिजों का प्रयोग चर्मरोग, क्षयरोग, कुष्ठरोग तथा मूत्रविकार के उपचार में किया जाता था। प्रस्तुत लेख में विविध खनिजों के औषधीय उपयोगों की चर्चा की गयी है।

अनादि काल से ही बहुत से खनिज भारतीय चिकित्सा में औषध के रूप में इस्तेमाल होते रहे हैं। आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति पर संस्कृत में लिखे अनेक ग्रंथ इसकी पुष्टि करते हैं। यहां भारतीय चिकित्सा का तात्पर्य आयुर्वेद से है। अपने देश में विषम (एलोपैथी) चिकित्सा की शुरुआत के पहले आयुर्वेद का बड़े पैमाने पर उपयोग होता था। एलोपैथी के आने से लोगों का आयुर्वेद के प्रति रुझान कम होता गया जिसका कारण रहा –सामाजिक विकास एवं परिवर्तन को देखते हुए इस चिकित्सा में शोध एवं नये अनुसंधान का अभाव। उधर एलोपैथी में निरंतर शोध होता रहा। परिणाम यह हुआ कि आज सर्पिज (सरपेन्टीन) खनिज का उपयोग लंगड़ाने वाले रोग (फ्लोरोसीस) के उपचार में किया जा रहा है। पर यह निर्विवाद सत्य है कि जिन रोगों के उपचार के लिए एलोपैथी में आज कोई औषध नहीं है वह औषध आयुर्वेद चिकित्सा में वर्णित कुछ खनिजों में है।

भारतीय चिकित्सा में रोगों के निदान के लिए खनिजों का उपयोग कब से प्रारंभ हुआ, इसका प्रमाण हमें प्राप्त या उपलब्ध ग्रंथों से होता है। खनिजों के उपयोग की प्रथम जानकारी हमें प्रागैतिहासिक काल के पुरावशेषों से मिलती है। अतः खनिजों की ऐतिहासिकता को हमें क्रमबद्ध चरण के रूप में देखना होगा।

प्रागैतिहासिक काल (4000 से 1500 ई. पू.) :

सिंधु घाटी के निवासी अनेक खनिज अयस्कों तथा शैलों से परिचित थे जिन्हें वे बतौर आभूषण एवं औषध के रूप में उपयोग करते थे। मोहन-जो-दड़ो में उत्खनन के बाद सेरुसाइट एवं सिनेबार प्राप्त हुए हैं। आभूषण के रूप में जितने भी खनिज उपयोग में लाये जाते रहे - कालांतर में अर्थात वैदिक एवं आयुर्वेदिक काल में वे बतौर औषध के रूप में भी इस्तेमाल किये जाने लगे।

वैदिक एवं आयुर्वेदिक काल (1500 ई. पू. से 800 ई. तक) :

वैदिक काल में, हालांकि स्वर्ण, सीसा तथा अन्य औषधियों, वनस्पतियों का उपयोग होता था (अथर्ववेद), पर खनिजों के संबंध में कोई प्रमाण नहीं हैं। अथर्ववेद से यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि प्राचीन भारतीयों ने औषध एवं रसायन विज्ञान में बहुत कुछ विकास कर लिया था जिसको ग्रीक सभ्यता से किसी भी हालत में कम करके नहीं आंका जा सकता है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में अयस्कों, खनिजों एवं धातुओं का विस्तृत विवरण मिलता है।

चरक और सुश्रुत ने अपनी संहिताओं में प्रथम बार वैज्ञानिक शीर्षकों के अंतर्गत चिकित्सा की हिंदू पद्धति (आयुर्वेद) को सिलसिलेबार रखा। बाद में अनेक विद्वानों ने इनकी संहिताओं के आधार पर औषध संबंधी पुस्तकें लिखीं। आत्रेय के शिष्य अग्निवेश (तक्षशिला विश्वविद्यालय में चिकित्सा शास्त्र के प्राध्यापक) का कार्य चरक संहिता का आधार बना है। चरक मुख्यत: औषधियों एवं सुश्रुत शल्य चिकित्सा के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। चरक ने छः धातुओं के औषध के रूप में उपयोग का वर्णन किया है। ये हैं - स्वर्ण, रजत, ताम्र, सीसा, त्रपु एवं लौह। औषध का गोलियों के रूप में उपयोग के लिए जंग तथा माक्षिक (पायराइट) का उपयोग वर्णित है। चिकित्सीय योग बनाने में चरक ने जतुकी (बिटुमन), शैल लवण (रॉक साल्ट), हरिताल (आरपिमेंट), नील तथा हरा काचर (विट्राल), खड़िया (चाक), गंधक (सल्फर), पीत एवं रक्त गैरिक (ऑकर, रक्त-मृत्तिका) आदि खनिजों का उपयोग किया है।

चरक संहिता में पारद (मर्करी) को बहुत महत्व दिया गया है। इसके कई नाम हैं - रस, रसेंद्र, सूत, दरद, बरबरा आदि। इसके स्रोत का उल्लेख नहीं मिलता। प्राकृतिक सोने को स्वर्ण या कनक, जांबूनद, हिरण्य, शाताकुंब, हेमा आदि समानार्थी शब्दों में वर्णित किया गया है। इसी तरह प्राकृतिक चांदी को रूप या रजत, तांबे को भानु लोहा या ताम्र, लोहा को अश्मसारा, सीसे को नाग, टिन को कस्तीरा तथा जिंक को वंग नाम दिया गया है। प्राकृतिक बिस्मथ को रसक नाम से पुकारा गया है। बहुमूल्य एवं अर्ध-बहुमूल्य खनिजों एवं पत्थरों का विवरण रत्न शीर्षक के अंतर्गत मिलता है। डायमंड को वज्र, रूबी/कोरंडम को माणिक्यम्, इमरैल्ड, पेरिडोट तथा लिजारडाइट को मणकतम्, टोपॉज को पुशीरागम, गारनेट या ज़िरकॉन को गोमंदम् आदि नामों से विभिन्न योगों में उपयोग किया गया है।

अन्य खनिजों में गंधक या शुल्बरी (सल्फर), गैरिक, कशिश (हेमाटाइट), मनःशिला (रियालगर), नीलांजन (स्टीबनाइट) आदि का विवरण मिलता है। साधारण रस में जिन खनिजों का वर्णन है वे हैं – हिंगुलम (सिनेबार), मृदारस (लिथार्ज) तथा पीत या श्वेत गौरी पाषाण (आर्सनिक)। मुख्य खनिज पदार्थों अर्थात महारस में प्राकृतिक बिस्मथ के अलावा कुप्य (केलामीन), कुप्यशिज (स्फेलेराइट) एवं पायराइट को विमल, चाल्कोपायराइट को माक्षिक, बायोराइट को अभ्रक आदि नामों से योगों में प्रयोग किया गया है।

सुश्रुत ने मुख्यतः वानस्पतिक औषधियों का ही वर्णन किया है पर श्लोक में उपरोक्त छह धातुओं तथा उनके चूर्ण का औषध के रूप में उपयोग लिखा है। खनिजों में कॉपर सल्फेट, आयरन सल्फेट, रक्त गैरिक तथा आरपिमेंट को विष माना गया है।

चरक एवं सुश्रुत के बाद वाग्भट्ट तथा दूसरों ने खनिजों को पांच शीर्षकों के अंतर्गत रखा यथा महारस, उपरस, साधारण रस, रत्न एवं धातु। यह वर्गीकरण खनिजों के प्राकृतिक गुणों पर आधारित था जिससे वे आसानी से पहचाने जा सकें। कुछ भी हो, वर्गीकरण का कारण आयुर्वेदिक औषधियों के निर्माण की उपयोगिता ही रहा होगा। यहां पर यह ध्यान देने योग्य बात है कि खनिज पदार्थों के जो नाम संस्कृत में दिये गये हैं, उनकी तुलना आधुनिक खनिज विज्ञान में उल्लिखित नामों से नहीं की जा सकती। प्रायः संस्कृत में अनेक खनिज या खनिज वर्ग को एक ही नाम दिया गया है फलतः आयुर्वेद शास्त्र के बहुत से विद्वान उपचार में एक दूसरे से असहमत रहते हैं।

संक्रमण / अंतर्वर्ती काल (800 ई. से 1100 ई.) :

इस युग में चिकित्सा क्षेत्र में दो विद्वानों का उल्लेखनीय योगदान रहा। वृंद का सिद्धयोग तथा चक्रपाणी दत्ता का चक्रदत्ता। सिद्धयोग तथा चक्रदत्ता में मर्करी, कॉपर, शैल लवण, सल्फर, पायराइट तथा चक्रदत्ता खनिजों का विवरण मिलता है जिन्हें विभिन्न रोगों के उपचार में प्रयोग किया जाता था।

वैदिक / आयुर्वेदिक काल के अंतिम चरण तथा संक्रमण काल के अगले दो सौ वर्षों को तांत्रिक काल भी

तालिका -1: प्राचीन एवं मध्य युगों में खनिजों का औषधीय उपयोग

(एक रूपरेखा)

काल	भारत	चीन	मिस्त्र एवं अरब	मेसोपोटामिया एशिया माइनर	ग्रीस एवं पश्चिमी योरप
	प्राकृतिक धातु काल, स्वर्ण का ज्ञान, प्राकृतिक तांबे का औजार के रूप में उपयोग				
4000 ई. पू.	ताम्र एवं स्वर्ण	-	स्वर्ण, रजत, सीसा, ताम्र एवं टिन	स्वर्ण, रजत, सीसा, ताम्र, टिन एवं एंटीमनी	-
2500 ई. पू.	रजत, सीसा, ताम्र, आर्सेनिक, माइका, सेरुसाइट, सिनेबार जिप्सम (2000 ई.पू.)	ताम्र	लौह, टिन, मर्करी, कोबाल्ट	-	स्वर्ण, रजत, सीसा एवं ताम्र
1500 ई. पू.	टिन	लौह	लौह	लौह, रत्न	लौह, टिन, कोबाल्ट
100 ईसा	ताम्र तथा लौह के सल्फाइड, सल्फर, रियालगर, आर्पीमेंट, आर्सेनिक (400 ई.), साल्टपीटर (600 ई.)	सिनेबार	अरब :- खनिज विज्ञान पर पहली पुस्तक	अलेक्जेंड्रिया :- सिनेबार, आर्सेनिक	-
800 ईसा	मर्करी का बड़े पैमाने पर उपयोग, सल्फर, लौह का औषध में उपयोग नागार्जुन रसायनज्ञ द्वारा, एंटीमनी (900 ई.), मर्करी के क्लोराइडों का औषधीय उपयोग	सिनेबार से मर्करी का निष्कर्षण, को हुंग विख्यात रसायनज्ञ	-	-	सफेद सीसा, आर्सेनिक
1300 ईसा	खनिज अम्लों का निर्माण (1500 ई.)	-	-	-	मर्करी, सल्फर, लवण एवं जिंक

माना जाता है । इस काल में मुख्यतः दो धाराओं का विवरण मिलता है – ये हैं ब्राह्मण और बौद्ध । रसारनव में मर्करी को रसारनव कहा गया है जो शिव या हरि का बीज है । इसी तरह माइका (अभ्रक) को पार्वती का बीज कहा गया है तथा दोनों के योग को मृत्यु और गरीबी का नाशक कहा गया है ।

नागार्जुन ने अपने रस रत्नाकर में केलामीन, सिनेबार तथा पायराइट खनिजों का उल्लेख किया है । भिक्षुगोविंद ने अपनी पुस्तक रसहृदय में खनिजों को रस एवं उपरस में वर्गीकृत किया है । आठ रसों के अंतर्गत विक्रांत (स्पीनेल), कांता (लौह), ससायक (ब्लू विट्राल), माक्षिक (पायराइट), विमला (पायराइट के प्रकार), आद्री (बिटुमन), दरद (सिनेबार) एवं रसक (केलामीन) आते हैं जबकि उपरस में सल्फर, गैरिक, कछारा (अभ्रक) तथा अंजन (लेड तथा एंटीमनी के सल्फाइड्स) सम्मिलित हैं । इसी तरह रसकल्प में खनिजों को महारस, रस एवं उपरस में विभाजित किया गया है ।

अगद रसायन काल (1300 से 1500 ई.) :

तांत्रिक काल में औषधियों के संबंध में जितना बड़ा संग्रह पुस्तकों के रूप हुआ था वह इस काल में बड़े पैमाने पर उपयोग में आया । रसरत्न समुच्चय इस काल की एक विशिष्ट उत्पत्ति है । इसमें खनिजों एवं धातुओं के रूप में उपयोग का विस्तृत विवरण मिलता है । इसमें खनिज जगत को मुख्यतः चार भागों में विभाजित किया गया है – रस, उपरस, रत्न और लोहा । रस सामान्यतः पारा (मर्करी) के लिए इस्तेमाल किया गया है । अभ्रक की तीन किस्मों का विवरण है जिन्हें पिनाकम, नागमंदुकम तथा वज्रम कहा गया है ।

खनिज औषधियों की उपचार क्षमता :

आयुर्वेद शास्त्र के विद्वानों ने माना है कि खनिजों को औषध के रूप में इस्तेमाल कर अनेक रोगों का निदान संभव है । प्राचीन भारतीय चिकित्सा पद्धति इसका प्रमाण है । विभिन्न विद्वानों ने खनिजों की उपचार क्षमता का वर्णन किया है । चरक संहिता में सल्फर को वनस्पतियों के साथ संयुक्तकर अनेक चर्मरोगों में बाह्य प्रयोग का विवरण मिलता है । रसरत्नसमुच्चय में श्वेत माइका का अग्निमांध (डिसपेप्सिया) तथा मूत्र-विकार में आंतरिक उपयोग का वर्णन है । इसी तरह नीले थोथे को सफेद दाग के निवारण की उत्तम खनिज औषधि माना गया है ।

अनेक रोगों में इस्तेमाल होने वाला भूरा अभ्रक (बायोटाइट-माइका) की राख से टी. बी., लेप्रोसी तथा ब्रांकाइटिस के उपचार में मदद मिलती है । फ्लोरस्पार की राख से विष का उपचार तथा बिटुमन खनिज द्वारा हृदय एवं चर्मरोगों का निदान किया जा सकता है । इसी प्रकार ताम्र अयस्क द्वारा जननेंद्रिय एवं अम्लता (एसिडिटी) के रोगों का उपचार संभव है । प्राकृतिक बिस्मथ, केलामीन एवं सल्फर की भस्मों के योग का उपयोग कर चर्मरोग, टी. बी., वायरल बुखार, तथा टाइफाइड का उपचार किया जा सकता है । लाल गैरिक द्वारा तैयार योग से नेत्र रोग, दस्त, उल्टी आदि का निदान संभव है । इसी प्रकार स्टीबनाइट से नेत्र रोगों तथा आरपीमेंट युक्त औषध से गले के पुराने रोगों को ठीक किया जा सकता है ।

इस तरह हम देखते हैं कि औषध के रूप में खनिजों का उपयोग भारतीय चिकित्सा में प्राचीन काल से ही होता रहा है । भारत के अलावा अन्य उप-महाद्वीपों में भी खनिजों को औषध के रूप में मान्यता प्राप्त थी । प्राचीन एवं मध्य युगों में औषध के रूप में प्रयोग होने वाले खनिजों को तालिका में दर्शाया गया है जिससे प्रमाणित होता है कि अनेक प्रचीन सभ्यताएं खनिजों की औषधीय गुणों से भिज्ञ थीं तथा रोगों के निदान के लिए उपयोग में इन्हें लाती थीं ।

❐❐❐

होम्योपैथी द्वारा गहन शिरा घनास्रता का उपचार

समीर कुमार जिंदल
विद्यार्थी, बी. एच. एम. एस. (द्वितीय वर्ष)
बी-133 केंद्रीय विहार, सेक्टर 38,
नेरुल, नवी मुंबई - 400 706

गहन शिरा घनास्रता लगभग एक लाइलाज घातक बीमारी है । आधुनिक चिकित्सा प्रणाली में इस रोग के लिए कोई कारगर औषधि अभी तक विकसित नहीं हुई है और शल्य चिकित्सा से रोग के बढ़ जाने का खतरा रहता है । पिछले कुछ वर्षों में होम्योपैथी के चिकित्सकों ने इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों की सहायता से इस रोग पर होम्योपैथिक औषधि के प्रभाव का गहन अध्ययन किया है और रोग निदान में सफलता भी प्राप्त की है । इस लेख में गहन शिरा घनास्रता एवं होम्योपैथी द्वारा उसके इलाज के बारे में संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है ।

मानव शरीर को स्वस्थ बनाये रखने के लिए रक्त प्रवाह के महत्व से हम भली भांति परिचित हैं । इसके अभाव में शरीर के विभिन्न अवयवों की मृत्यु और शरीर का रोगग्रस्त होना स्वाभाविक है । ऑक्सीजन युक्त रक्त हृदय के बांयें भाग से शरीर के सभी भागों में अत्यंत सूक्ष्म वाहक नलियों के जाल के द्वारा पहुंचता है । शरीर के सभी ऊतकों को भोजन एवं ऑक्सीजन प्रदान करने के उपरांत उनके अवांछनीय पदार्थ रक्त में मिलकर उसे अशुद्ध कर देते हैं । इस अशुद्ध रक्त का शुद्धिकरण परम आवश्यक है ताकि यह पुनः भोजन एवं ऑक्सीजन पहुंचाने का कार्य कर सके । यह अशुद्ध रक्त, सूक्ष्म शिराओं (superficial veins), गहन शिराओं (deep veins), और बृहद शिराओं (great veins) द्वारा हृदय के दाँये भाग में पहुंचता है । रक्त का यह प्रवाह गुरुत्वाकर्षण के विपरीत दिशा में होने के कारण मनुष्य की गतिविधि पर आश्रित होता है । अशुद्ध रक्त हृदय के दाँये भाग से फेफड़ों में जाता है जहाँ श्वास क्रिया द्वारा ऑक्सीकृत एवं शुद्ध हो पुनः हृदय के बाँये भाग में जाता है (चित्र-1) । रक्त में भोजन (nutrient) यकृत और छोटी आँतों द्वारा पहुँचता है । जिसका शुद्धिकरण गुर्दों (kidneys) द्वारा किया जाता है । तलीय गहन शिराओं में घनास्त्र (thrombus) बनने के कारण गहन शिरा में रक्त प्रवाह अवरुद्ध हो जाता है । इसे गहन शिरा घनास्रता कहते हैं । इसके कारणों में अंतर्शिरीय सुई (intravenous injection), शिरा घात, व्यायाम की कमी, गर्भ निरोधक दवाओं का सेवन, गर्भावस्था, पेट की शल्य क्रिया आदि प्रमुख हैं ।

इस रोग में सर्वप्रथम हाथ पैरों में सूजन और दर्द का अनुभव होता है परंतु रोग पुराना होने पर तलीय शिराओं का स्फीतिकरण, स्फीत चर्म रोग एवं स्फीत आदि लक्षण भी उभरने लगते हैं । साथ ही अन्य हिस्सों पर भी दुष्प्रभाव शरीर के पड़ सकता है ।

1. घनास्त्र या उसका कोई टुकड़ा गहन शिरा से बृहद शिराओं द्वारा फेफड़ों में पहुंचने पर फुप्फुस वाहिकारोध (pulmonary embolism) जैसी घातक बीमारी से रोगी की मृत्यु हो सकती है ।
2. घनास्त्र या उसका कोई टुकड़ा रोगी की धमनियों में पहुंचकर लकवा या गैंगरीन जैसी बीमारी को जन्म देता है ।
3. आयोर्टा (aorta) एवं फुप्फुस धमनी (pulmonary artery) के बीच में वाहिनी यथा स्थिति होने पर लकवा या गैंगरीन जैसे रोग होने की संभावना होती है ।

अतः आवश्यक है कि गहन शिरा घनास्रता का निदान व उपचार शीघ्रतिशीघ्र किया जाये । इसके लिए विनोग्राफी तकनीकी द्वारा रोगी की शिराओं में विकिरण

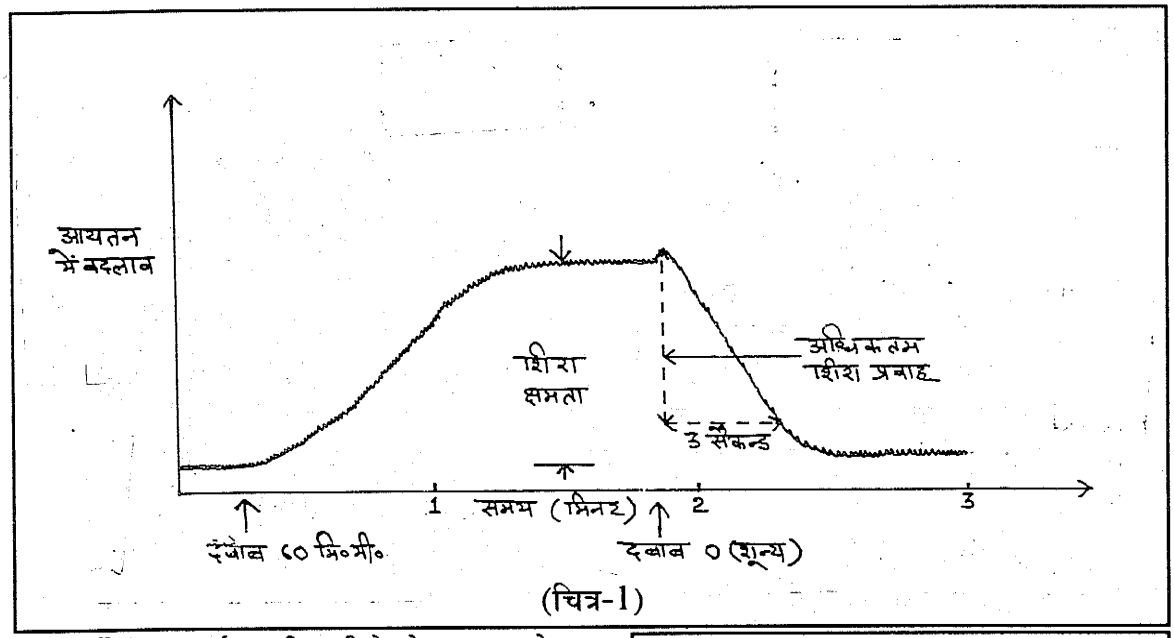

(चित्र-1)

अपारदर्शी रंजक (डाई) डाली जाती है जो रक्त प्रवाह के साथ शिराओं में बहती है ।

इसके क्ष-किरण चित्रण से रक्त प्रवाह में रुकावट तुरंत मालूम पड़ जाती है (चित्र-2) । इस विधि में घनास्र की जानकारी के साथ-साथ रोग उत्पन्न होने का भी खतरा होता है अतः इसका प्रयोग बहुत सावधानी के साथ किया जाता है ।

अपेक्षाकृत बड़ी शिराओं में पराध्वनि चित्रण द्वारा भी निदान किया जा सकता है परंतु व्यापक रूप में उसका प्रयोग सुलभ नहीं है ।

इस रोग के निदान के लिए सबसे अधिक उपयुक्त तकनीक असंक्रामक शिरीय अधिधारण सिद्धांत (non-invasive venous occlusion principle) पर आधारित है । इस तकनीक में रोगी की जांघों पर एक टुर्निकेट (torniquet) बांध दिया जाता है और उसमें 50 या 60 मिमी. दबाब स्थापित कर दिया जाता है । रोगी की पिंडलियों में किसी भी आयतन लेखन तकनीक द्वारा आयतन में परिवर्तन का माप लिया जाता है । आयतन में परिवर्तन बंद होने पर दबाब को एक साथ निकाल दिया जाता है जिससे पिंडलियों में रुका हुआ रक्त पुनः हृदय की तरफ जाता है और उस भाग का आयतन अपनी पूर्व स्थिति में आ जाता है (चित्र-3) ।

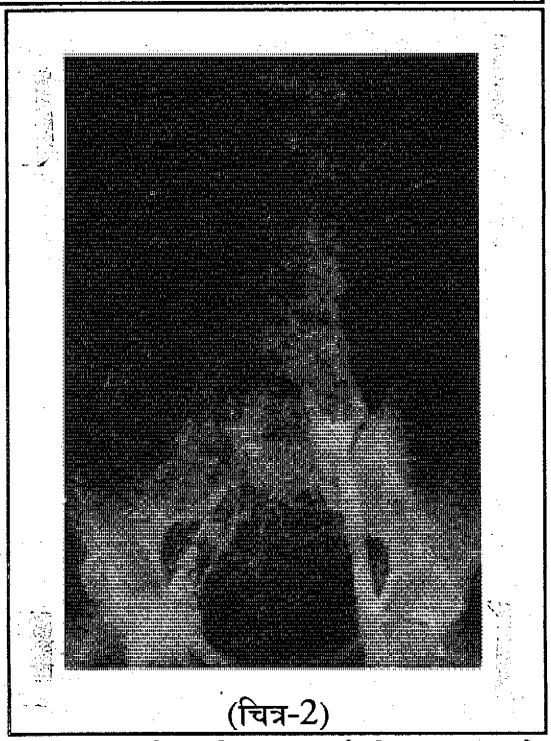

(चित्र-2)

इस आलेख की सहायता से शिरा क्षमता और अधिकतम शिरा प्रवाह आदि प्राचलों के मान की गणना की जाती है ।

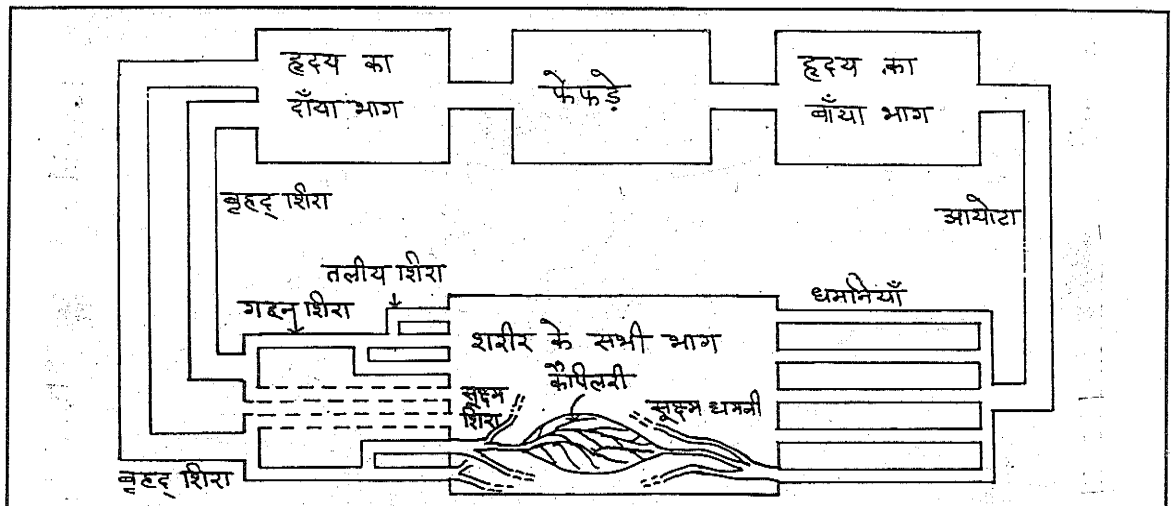

(चित्र-3)

यद्यपि इस विधि में सफलता लगभग 75 - 80 प्रतिशत पायी गयी है। परंतु चिकित्सक के पास मरीज के देर से पहुंचने के कारण यह निदान संदिग्ध हो जाता है। अतः एक अन्य विधि में रोगी के पैरों, घुटनों, पिंडलियों और एड़ी के हिस्सों में धमनियों का रक्त प्रवाह अवरोध आयतन अभिलेखी द्वारा मापा जाता है। यदि पैर को 45^0 के कोण पर उठा दिया जाय तो द्वितीयक स्फीत शिरा की उपस्थिति में रक्त प्रवाह का माप 25 - 100 प्रतिशत तक बढ़ जाता है, जबकि स्वस्थ मनुष्य में यह माप 10 - 15 प्रतिशत तक ही घटता या बढ़ता है। इसके अतिरिक्त स्पंद समाप्ति समय भी द्वितीयक स्फीत शिरा की उपस्थिति में बढ़ जाता है। शिरीय शिथिलता गुणांक एवं स्पंद समाप्ति समय की सहायता से द्वितीयक स्फीत शिरा का निदान किया जाता है।

इस प्रकार उपरोक्त दोनों विधियां अपनाने पर गहन शिरा घनास्रता का निदान काफी हद तक सरल एवं पूर्णतः हानिरहित है। इन विधियों की विशेषता यह है कि आवश्यकता पड़ने पर इन्हें बार-बार उपयोग में लाया जा सकता है और रोगी को किंचित मात्र भी हानि नहीं पहुंचती।

आधुनिक चिकित्सा पद्धति में गहन शिरा घनास्रता का उपचार बहुत ही सीमित है। रोग की गंभीर अवस्था में रोगी को हिपेरिन चिकित्सा दी जाती है जिससे प्रायः रोगग्रस्त होने से बचाव तो हो जाता है परंतु एक बार यह बीमारी लग जाय तो छुटकारा पाना असंभव-सा ही है। कुछ निर्देशों का नियमित पालन करने से (सोते समय 1 या 2 तकिए पैर के नीचे रखना) रोग की उग्रता कुछ कम हो जाती है।

सदृश्य चिकित्सा पद्धति में ऐसी बहुत-सी औषधियां उपलब्ध हैं जिनका रक्त एवं रक्त वाहिकाओं पर अच्छा प्रभाव पड़ता है :-

आर्निका मान्टाना 'क्यू' :

गंभीर अवस्था में यह मरीज को 30- 40 बूंद प्रतिदिन नियमित दी जाय तो न केवल यह गहन शिरा घनास्रता की रोक थाम करती है, अपितु आंतरिक घाव (शोथ), जो प्रायः शल्य क्रिया दौरान हो जाता है, को भी ठीक कर देती है। इतना ही नहीं अंतर्शिरीय द्रव देने से प्रायः जो घनास्र शिरा संक्रमित हो जाती है उसको भी आर्निका मान्टाना यथाशीघ्र दूर कर देती है। उच्च शक्ति (30, 200, 1M, 10M) में भी यह औषधि गहनशिरा घनास्रता के उपचार में उपयोगी होती है।

कल्केरिया फ्लोरिकम 6X:

यह रक्तवाहिकाओं की आंतरिक सतहों आदि को दुरुस्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसका प्रभाव द्वितीयक स्फीत शिरा पर अति वांछनीय है

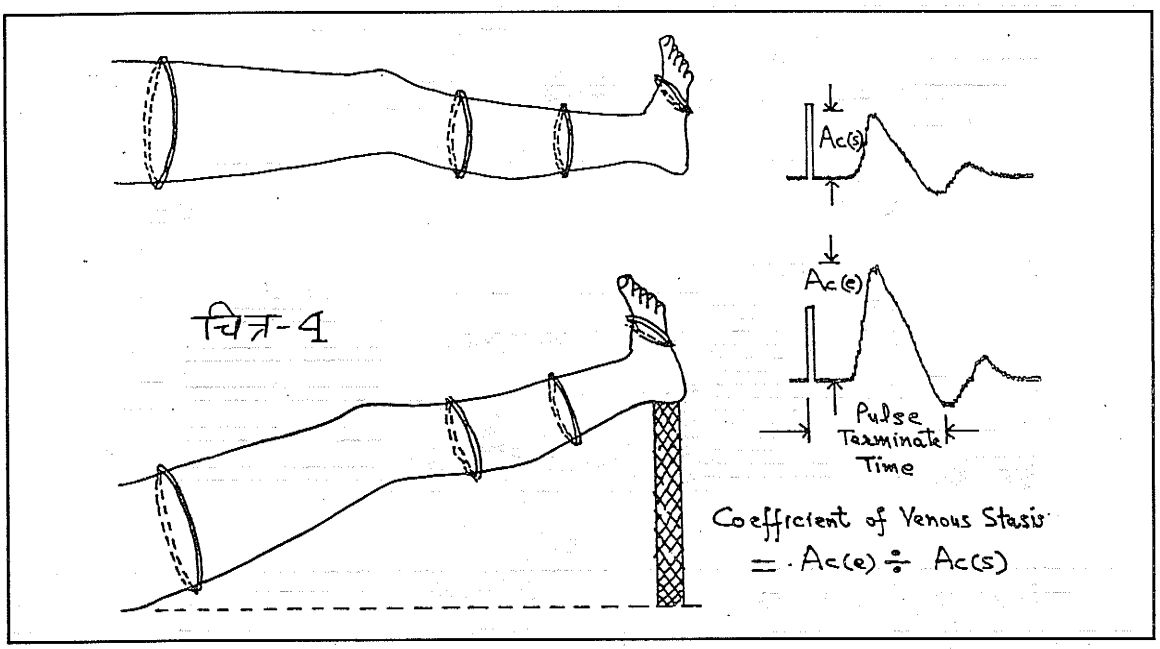

तालिका-1

प्राचल	इलाज से पहले (औसत ± मा. वि.)	इलाज के बाद (औसत ± मा. वि.)	नियंत्रक मान (औसत ± मा. वि.)
CVS	1.35 ± 0.46	1.15 ± 0.26	0.93 ± 0.11
PTT	460 ± 96.8	425 ± 66.5	393.8 ± 28.7
VC	0.47 ± 0.19	0.60 ± 0.18	0.74 ± 0.15
MVO	0.09 ± 0.04	0.11 ± 0.05	0.17 ± 0.05

मा. वि. : मानक विचलन

इसलिए लगभग सभी मरीजों को यह औषधि दूसरी औषधिओं के साथ सेवन करायी जाती है ।

यदि यह कहा जाय कि आर्निका एवं कल्केरिया फ्लोर केवल ये दो औषधियां ही 90 प्रतिशत रोगियों के उपचार में सक्षम हैं तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी ।

कोनियम, हेमामेलिस, पल्सेटिला, वाइपेरा :

ये औषधियां रोगी के अन्य लक्षणों को ध्यान में रखकर चयन की जाती हैं । इनमें से कोई भी एक आर्निका एवं कल्केरिया फ्लोर के साथ यदि रोगी को दी जाय तो गहन शिरा घनास्रता का इलाज लगभग 95 प्रतिशत होने की संभावना है ।

इस बीमारी के लगभग 40 रोगियों में होम्योपैथिक इलाज के पहले और 3 महीने बाद के अवरोध आयतन अभिलेखी एवं OIP उपलब्ध आंकड़ों को तालिका-1 में दिखाया गया है । तालिका से स्पष्ट है कि होम्योपैथिक इलाज के बाद सभी प्राचलों की मात्राओं में सुधार होता है । लगभग दो वर्ष तक इलाज चलने के बाद यह पाया गया है कि करीब 38 रोगी रोग मुक्त हो चुके थे । केवल 2 रोगी, जिनमें इलाज शुरू करने से पहले रोग काफी बढ़ चुका था, में बहुत कम सुधार पाया गया ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कुछ असाध्य बीमारियां जिनमें आधुनिक चिकित्सा पद्धति ज्यादा प्रभावी नहीं पायी जाती है, दूसरी चिकित्सा पद्धति द्वारा ठीक की जा सकती हैं । आवश्यकता है ऐसे परिणामों को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से कलमबद्ध करने की ।

❐❐❐

मेंढक एक उपयोगी जंतु

डॉ. राज किशोर
डॉ. राम मनोहर लोहिया,
अवध विश्व विद्यालय, फैजाबाद

एंफीबियन समुदाय का प्राणी मेंढक प्रकृति में निहित पारिस्थितिकीय संतुलन का एक अभिन्न अंग है। भोजन श्रेणी के प्राकृतिक संतुलन को बनाये रखने में इसका महत्वपूर्ण योगदान है। कीड़े-मकोड़ों से मेंढक-सांप-बाज आदि की भोजन श्रेणी में मेंढक एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और वह भूमिका है हमारी फसलों को कीड़े-मकोड़ों से व मनुष्य को बीमारियों से बचाना। आज मानव द्वारा इस उभयचर प्राणी का अनवरत रूप से संहार करने से इस संतुलन को खतरा पैदा हो गया है। प्रस्तुत लेख में लेखक ने प्रकृति के इस असहाय प्राणी की व्यथा को अत्यधिक मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है।

मानव समाज के कल्याण में विश्व के जो जीव-जंतु परोक्ष-अपरोक्ष रूप से अपना योगदान देते हैं उनमें मेंढक सर्वोपरि है। मेंढक गड्ढ़ों तथा ताल-तलैयों में पलने वाले मच्छरों के लारवों को खाकर हमें विभिन्न रोगों से बचाते हैं तथा फसलों को नुकसान पहुंचाने वाले विभिन्न प्रकार के कीड़े-मकोड़ों को खाकर हमारी फसलों की सुरक्षा करते हैं।

जीव-धारियों के वर्गीकरण में मेंढक एनिमेलिया जगत के कार्डेटा समुदाय में आता है जो एंफीबिया वर्ग से संबंधित है और एन्यूरा कहलाते हैं। जीव विज्ञान के अनुसार भारतीय मेंढक के वंशीय एवं जातीय नाम को मिलाकर इसे "राना टिग्रीना" कहते हैं।

संपूर्ण विश्व में मेंढक की दो से ढाई हजार प्रजातियां पायी जाती हैं। इनमें टोड, भेक आदि भी सम्मिलित हैं। सामान्य मेंढक एवं टोड को चचेरे भाइयों की संज्ञा दी जा सकती है। सामान्य मेंढक जहाँ पानी वाले स्थानों में रहते हैं वही टोड शुष्क स्थानों में रहना पसंद करते हैं। सामान्य मेंढक की त्वचा चिकनी, लिसलिसी एवं आकर्षक होती है जबकि टोड की त्वचा खुरदुरी एवं देखने में भद्दी होती है। अलग-अलग स्थानों में मेंढकों के आकार भी अलग-अलग होते हैं। सबसे छोटे आकार के मेंढक उष्ण-कटिबंधीय जलवायु वाले क्षेत्रों यथा क्यूबा आदि देशों में पाये जाते हैं। इनका आकार साधारण मक्खी के बराबर होता है और भार लगभग 6 मिग्रा.। आकार और भार की दृष्टि से दक्षिण अफ्रीका के कैमरून क्षेत्र में पाया जाने वाला "गोलिथ" प्रजाति का मेंढक विश्व का सबसे विशालकाय मेंढक है। आकार में यह लगभग 50 सेमी. का होता है और इसका वजन लगभग 6 किग्रा. होता है। यह छोटे-छोटे सांपों एवं चूहों आदि को सीधे ही निगल जाता है। "बुलफ्रॉग" प्रजाति के मेंढक भी आकार में लगभग 30 सेमी. से भी अधिक बड़े होते हैं। "ट्री फ्रॉग" प्रजाति के मेंढक आकार में बहुत छोटे (लगभग 3-4 सेमी. के) होते हैं। इन उभयचरों में सबसे अधिक आश्चर्यजनक हैं "पैराडॉक्सिल" मेंढक। इसका टैडपोल बढ़कर मेंढक नहीं बनता है बल्कि सिकुड़कर अपने से चौथाई आकार के छोटे मेंढक में परिवर्तित हो जाता है। भारत के मालाबार जंगलों में तथा जावा में पाया जाने वाला मेंढक "रैकोफोरम" उड़ने के साथ-साथ गिरगिट की तरह रंग बदलने में भी माहिर होता है। उड़ने के कारण

इसे "फ्लाइंग फ्रॉग" भी कहते हैं। कुछ विशेष जाति के मेंढक केवल वृक्षों पर ही अपना संपूर्ण जीवन व्यतीत कर देते हैं जिसके कारण ये "ट्री फ्रॉग" भी कहलाते हैं। इनमें "हाइलाइडी" जाति के मेंढक प्रमुख हैं। वृक्षों पर रहने वाले मेंढ़क में "सैंटोलेनाइडी" प्रजाति के मेंढक सबसे आश्चर्यजनक हैं। इनकी त्वचा कांच की भांति पूर्णतया पारदर्शी होती है जिसके कारण इनके शरीर के आंतरिक अंगप्रत्यंग तथा उनमें हो रही क्रियाएं स्पष्ट दिखाई पड़ती हैं। इस प्रजाति के मेंढक अधिकांशतः अमरीका में पाये जाते हैं। दक्षिण अमरीका में पाये जाने वाले "एरोपाइन्स" जाति के मेंढक की त्वचा में बहुत तीक्ष्ण जहर पाया जाता है। दक्षिण अमरीका के रेड इंडियन्स शत्रुओं को मारने के लिए अपने तीरों की नोक पर इसी जहर को लगाये रहते हैं। तीर की नोक के शिकार को छूते ही शत्रु का काम तमाम हो जाता है।

"परहित सरसि धरम नहि भाई," के सिद्धांत का अक्षरशः पालन करते हुए मेंढक मानव समाज से लेते तो कुछ भी नही हैं परंतु मानव समाज को देते बहुत कुछ हैं। मेंढकों से सबसे अधिक लाभ हमारी कृषि को पहुंचता है। वर्षा ऋतु आते ही कीड़ों- मकोड़ों का प्रकोप अत्यधिक बढ़ जाता है जिसके कारण फसलों को अत्यधिक नुकसान पहुंचता है। धान के खेतों, आस-पास के पोखरों एवं ताल-तलैयों में रहते हुए मेंढक हानिप्रद कीड़ों-मकोड़ों को खाकर फसलों की निरंतर सुरक्षा करते रहते हैं। इसी प्रकार आबादी के निकट या आबादी से दूर रुके हुए पानी में पलने वाले मच्छरों के लारवों को भी खाकर ये मेंढक हमें विभिन्न प्रकार के रोगों, विशेषतया मलेरिया से बचाये रखते हैं। लेकिन मनुष्य इतना कृतघ्न एवं स्वार्थी प्राणी है कि उसने अपने इस अनमोल एवं विश्वसनीय साथी का भी व्यापार प्रारंभ कर दिया।

यूं तो उपरोक्त कार्य के अतिरिक्त मनुष्य द्वारा स्वयं मेंढकों को जिस रुप में सर्वाधिक उपयोग में लाया जाता है, वह है जीव विज्ञान और चिकित्सा विज्ञान के विद्यार्थियों द्वारा प्रयोगशाला में उसका उपयोग। वस्तुतः जीव विज्ञान का पहला पाठ ही मेंढक के अध्ययन से प्रारंभ होता है और मैट्रिक से लेकर स्नातकोत्तर कक्षाओं तक के अध्ययन में मेंढक किसी-न-किसी रुप में अवश्य मौजूद रहता है। इसके अतिरिक्त अब पर्यावरण प्रदूषण, विशेषकर जल एवं थल प्रदूषणों के अध्ययन के लिए भी मेंढकों का प्रयोग होने लगा है।

मेंढक पर्यावरण में हो रहे बदलाव के महत्वपूर्ण संकेतक हैं क्योंकि पर्यावरण में जब भी कोई नाटकीय परिवर्तन होता है तो सबसे पहले इनकी ही मृत्यु होती है। ये परिवर्तन चाहे कृषि रसायनों के अनियोजित उपयोग के कारण उत्पन्न हुआ प्रदूषण हो या गैसीय प्रदूषण के कारण, जलवायु में उत्पन्न हो रहे परिवर्तन हों या ओजोन सतह के रिक्तीकरण के कारण पृथ्वी पर आने वाले पराबैंगनी विकिरणों की मात्रा में हो रही वृद्धि हो। अमरीका के एक जीव विज्ञानी डॉ. गैरी डिलर के अनुसार उभयचर प्राणियों पर पराबैंगनी विकिरणों का काफी विपरीत असर पड़ता है। संभवतः इसी कारण कोस्टारिका में मोन्टेबरी के पर्वतीय क्षेत्रों में पाया जाने वाला छोटा संतराई सुनहरा मेंढक अपने प्राकृतिक आवास में ही समाप्त होता जा रहा है।

संपूर्ण विश्व में मेंढकों की निरंतर कम होती जा रही संख्या के लिए कृषि रसायनों का आवश्यकता से अधिक उपयोग किया जाना भी एक महत्वपूर्ण कारण है। एडिलेड विश्वविद्यालय, आस्ट्रेलिया में मेंढकों के विशेषज्ञ डॉ. माइक टाइलर द्वारा किये गये शोध निष्कर्षों के अनुसार रसायनिक कीटनाशक गर्म पानी में जल्दी घुल जाते हैं और पानी में घुले हुए ये कीटनाशक मेंढकों के शरीर में आसानी से प्रवेश कर जाते हैं। अतः गर्म देशों में कृषि रसायनों का अंधाधुंध प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। इस अंधाधुंध उपयोग के कारण उष्ण कटिबंधीय देशों में मेंढक अधिक संख्या में मरते हैं या फिर विकलांग हो जाते हैं। डॉ. टाइलर के अनुसार आस्ट्रेलिया में खेतों, बागानों और उद्यानों से पानी में घुलकर आने वाले विभिन्न रसायनिक कीटनाशक नदियों और तालाबों के जल में सांद्रित हो जाते हैं जिसके कारण वहाँ पर मेंढकों की तीस से अधिक प्रजातियां प्रभावित हुई हैं। पश्चिमी आस्ट्रेलिया के कुनानुर्रा क्षेत्रों में किये गये एक अध्ययन के अनुसार जिन-जिन स्थानों

जनवादी जनतांत्रिक गणराज्य लाओ (एशिया) द्वारा वर्ष 1993 में लाओ के तीन विभिन्न प्रकार के मेंढकों पर जारी किये गये डाक-टिकट ।

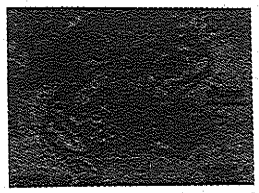

1. बुफो मैरीनस
(मूल्य 1 किप 85 सेंट)

2. सेन्टपोलेनेल्ला वाइरियोविटाटा
(मूल्य 100 किप)

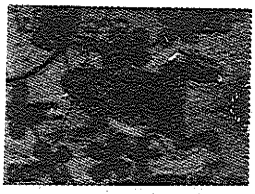

3. जिनोपस मुएलेरी
(मूल्य 10 किप)

पर डी. डी. टी. का उपयोग किया गया, वहां-वहां 97 प्रतिशत से अधिक मेंढक या तो मर गये या विकलांग हो गये । डॉ. टायलर के अनुसार पर्यावरण का कोई हल्का सा भी प्रदूषण मेंढक के प्रारंभिक जीवन - चक्र को काफी हद तक प्रभावित करता है । चूंकि मेंढक के अंडे और टैडपोल पानी में ही विकसित होते हैं अतः पानी में घुले विभिन्न प्रदूषकों का उनके क्रमिक विकास पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है जिसके कारण उनकी कंकाल रचना में दोष आ जाता है । पानी में ये प्रदूषक कृषि रसायनों के अंधाधुंध प्रयोग, रसायनिक अपशिष्टों के नदियों, तालाबों में निस्तारण एवं मच्छरों को नष्ट करने के लिए किये जाने वाले रसायनों के छिड़काव आदि से पहुंचते हैं ।

इसके अतिरिक्त मानव समुदाय के लिए विषपान करने वाले मेंढक अब खुद भोज्य पदार्थों की श्रेणी में भी आ गये हैं । पश्चिमी देशों में विगत कुछ दशकों से मेंढक की टांग पौष्टिक एवं लजीज भोजन का हिस्सा बन गयी है जिसके कारण इन देशों में इनकी मांग तेजी से बढ़ी है । दक्षिण एशिया के देशों में तो यह पहले से ही भोजन का हिस्सा थे ।

कुछ समय पूर्व तक भारत केवल अमरीका एवं यूरोपीय देशों को ही प्रतिवर्ष लगभग 3,000 टन मेंढक की टांगों का निर्यात करता रहा है । 3,000 टन मेंढक की टांगों को प्राप्त करने के लिए लगभग 10,000 टन मेंढक प्रतिवर्ष क्रूरतापूर्वक मौत के घाट उतार दिये जाते थे क्योंकि मेंढक की दोनों टांगों का भार उसके शरीर के कुल भार का मात्र एक तिहाई होता है ।

एक मेंढक प्रतिदिन लगभग अपने भार के बराबर कीड़े-मकोड़े चट कर जाता है । इस प्रकार वर्षा ऋतु के लगभग नब्बे दिनों (प्रायः जुलाई से सितंबर तक) के दौरान यदि उपरोक्त 10,000 टन मेंढ़कों को नहीं पकड़ा जाये (अधिकांशतः मेंढकों को इन्हीं नब्बे दिनों के भीतर पकड़ा जाता है) तो वे लगभग आठ ये दस हजार टन कीड़े-मकोड़ों (मुख्यतः मच्छर के लारवे तथा खेती को नुकसान पहुंचाने वाले कीड़े-मकोड़ों) को चट कर जायेंगे । यद्यपि अधिकृत रूप से देश से मेंढक की टांग का निर्यात बंद कर दिया गया है परंतु अभी भी चोरी-छिपे अवैध रूप से यह कार्य जारी है । इस प्रकार प्रयोगशाला से लेकर खाने की मेज तक के लिए इतनी बड़ी मात्रा में मेंढकों की हत्या ने अनेक दीर्घकालीन नयी समस्याओं को जन्म दिया है जिसमें पारिस्थितिकी संतुलन मुख्य समस्या है । मेंढकों की संख्या में निरंतर हो रही कमी से कीड़े-मकोड़ों एवं मच्छरों की संख्या में असीमित वृद्धि हुई है जिसका कुप्रभाव कृषि-उत्पादन एवं मानव स्वास्थ्य पर पड़ा है । कीड़े-मकोड़ों के

(शेष पृष्ठ -22 पर देखें)

पेटेन्ट नियम : एक अहम् आवश्यकता

कृष्ण प्रकाश त्रिपाठी
157 बाघंबरी योजना,
इलाहाबाद 211 006

वैज्ञानिक आविष्कारों के पेटेन्ट तथा बौद्धिक एवं जैव संपदा अधिकारों की सुरक्षा की आवश्यकता आज एक बहु चर्चित विषय है। पेटेन्ट नियम की आड़ में विकसित देशों द्वारा विकासशील एवं अविकसित राष्ट्रों की जैव संपदा का शोषण हो रहा है। भारतीय पेटेन्ट अधिनियम 1970 के अंतर्गत पेटेन्ट धारक के हितों पर राष्ट्रीय हितों को प्राथमिकता दी गयी है। प्रक्रियाओं के पेटेन्ट की व्यवस्था से औषधि निर्माण, कीटनाशक तथा रासायनिक क्षेत्रों में नवीन प्रक्रियाओं के विकास को सहयोग मिला है। विश्व व्यापार संगठन के माध्यम से हमारे पेटेन्ट अधिनियम में परिवर्तन लाने के प्रयास चल रहे हैं। इनसे संबंधित कुछ पहलुओं पर एक संक्षिप्त विवेचन इस लेख में दिया गया है।

यदि बौद्धिक संपदा अधिकार पद्धति को विकसित देशों द्वारा विकासशील देशों के नव औपनिवेशिक प्रौद्योगिकीय शोषण का एक पक्ष कहा जाय तो विकासशील देशों से विकसित देशों में प्रतिभा पलायन को दूसरा पक्ष कहा जा सकता है। इस प्रकार विकसित देश पेटेन्ट नियमों द्वारा विकासशील देशों में ज्ञान का मुक्त प्रवाह रोककर और प्रतिभा पलायन द्वारा ज्ञान के उत्पादन में उनके बहुमूल्य संसाधन – अत्यधिक योग्य जनशक्ति का क्षरण कर दो प्रकार से विकासशील देशों को लूट रहे हैं।

जैव संपदा की चोरी :

सारे भूमंडल में हमारा देश, संसाधनों का तीसरा विशाल भंडार है। यहाँ कृषि और औषधीय पादप विविधता का प्रचुर संग्रह उपलब्ध है।

अब तक विकसित देशों ने सौ से अधिक भारतीय पौधों का पेटेन्ट करवा लिया है। इनके पेटेन्ट कार्यालयों ने विविध विशेषताओं के लिए नीम, हल्दी, सरसों, अंडी, आँवला, तेजपात, कुमारी, करेला, काला जीरा, धतूरा, रीठा, अमलतास, अनार, अर्जुन, गुलमेंहदी, रंगून लता, हड़द, जंगली गुरुची, विलायती शीशम और छोटा गोखरू आदि औषधीय तथा कृषि पौधों पर पेटेन्ट प्रदान कर दिये हैं। हमारे यहाँ प्राप्त पौधों के अधिकतम पेटेन्ट प्रदान करने में अमरीका अग्रणी है। इसके बाद जापान, कनाडा, फ्रांस, जर्मनी और ब्रिटेन का स्थान है।

विश्व व्यापार संगठन द्वारा लागू व्यापार संबधी बौद्धिक संपदा अधिकार की आड़ में बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ हमारे बहुमूल्य पौधों तथा पशुओं के आनुवंशिक संसाधनों को यहाँ से ले जा रही हैं और हमारी जैव संपदा एवं हमारे यहाँ उपलब्ध पारंपरिक ज्ञान पर आधारित उत्पादों पर एकाधिकारपूर्ण नियंत्रण करती जा रही हैं। इस जैव संपदा के फलस्वरु प देश को प्रतिवर्ष लगभग पाँच बिलियन अमरीकी डॉलर के राजस्व से वंचित होना पड़ रहा है।

पेटेन्ट को आर्थिक शक्ति का मानक मानकर बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने जैव चोरी का वैकल्पिक मार्ग खोज लिया। अनुसंधान-विकास के नाम पर विदेशी बीज तथा औषधि निर्माता कंपनियों और उनके भारतीय सहयोगियों के संयुक्त उपक्रमों ने वैधानिक व नियंत्रक निकाय को धोखा देने की कपटपूर्ण विधि विकसित कर ली है। पौधों की छंटनी देश में ही

हो रही है और उपयोगी पौधों को परखनली कल्चर में रखकर विदेश भेजा जा रहा है।

अनेक बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने बहुआयामी विनिवेश समझौते का लाभ उठाकर देश में ही अनुसंधान-विकास केंद्र स्थापित कर लिये हैं । अमरीकी बीज कंपनी मॉनसान्टो ने महाराष्ट्र संकर बीज कंपनी के साथ अनुसंधान सहयोग कर हाल ही में दो करोड़ पचास लाख अमरीकी डॉलर की लागत से बैंगलूर में अनुसंधान-विकास केंद्र स्थापित किया है । ब्रिटेन की कृषि रसायन कंपनी यूनीलीवर ने भी उत्कृष्ट पादप अनुसंधान के लिए केंद्र स्थापित करने का निर्णय घोषित कर दिया है । देश में उपलब्ध पादप जननद्रव्य (जर्मप्लाज्म) के भंडार पर नजर लगाकर अनेक विदेशी विश्वविद्यालय और बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के साथ अनुसंधान समझौते कर रही हैं ।

व्यापार संबंधी बौद्धिक संपदा अधिकार :

विश्व व्यापार संगठन ने दवाओं, तकनीकों तथा उत्पादनों के अतिरिक्त जैव प्रक्रियाओं व उत्पादों को बौद्धिक संपदा की मान्यता प्रदान की है । प्रौद्योगिकी के उपयोग के कारण बौद्धिक संपदा अधिकार आजकल अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में महत्वपूर्ण प्रकरण बन गया है । इस संपदा के रक्षक अधिकार अन्य व्यक्तियों तथा संस्थाओं को इसकी सामग्री के निर्माण, नकल उपयोग अथवा विक्रय से प्रतिबंधित करते हैं । इन अधिकारों में पेटेन्ट, व्यापारिक रहस्य, ट्रेडमार्क तथा कॉपीराईट सम्मिलित हैं जिनकी रक्षा विभिन्न देशों में विभिन्न प्रकार के कानूनों द्वारा की जाती है । किसी आविष्कार का पेटेन्ट अन्य व्यक्तियों अथवा संस्थाओं को किसी निश्चित अवधि तक उसके निर्माण, उपयोग और विक्रय के अधिकार क्षेत्र से बाहर रखने का अधिकार प्रदान करता है । पेटेन्ट योग्य सामग्री का मूल्यांकन नवीनता, उपयोगिता और संवैधानिकता के आधार पर किया जाता है ।

व्यापार संबंधी बौद्धिक संपदा अधिकारों में किसी आविष्कार की प्रक्रिया व उत्पाद के लिए पेटेन्ट; आविष्कार के स्थान, प्रौद्योगिकी क्षेत्र और उत्पादों के आयात तथा स्थानीय उत्पाद के लिए किसी भेदभाव के बिना पेटेन्ट अधिकार का उपयोग; पेटेन्ट की अवधि बीस वर्ष; पेटेन्ट का उल्लंघन होने पर प्रमाण का बोझ आरोपित व्यक्ति या संस्था पर; पौधों व सूक्ष्मजीवों के लिए पेटेन्ट और पेटेन्ट धारक द्वारा किसी देश में किसी वस्तु के उत्पादन की इच्छा न होने पर अनिवार्य लाइसेन्सिंग की समाप्ति सम्मिलित है ।

हाल ही में कुछ देशों में पौधों और पशुओं संबंधित आनुवंशिक सामग्री को ऐसी सुरक्षा की गारंटी प्रदान की गयी है जिससे पेटेन्ट की गयी सामग्री का उपयोग भावी प्रजनन के लिए नहीं किया जा सकता है और कृषक पेटेन्ट धारक को शुल्क दिये बिना बीज का उपयोग फसल उगाने के लिए नहीं कर सकते हैं ।

आजकल जापान, अमरीका और यूरोपीय संघ के देश अपने उभरते बीज तथा जैव प्रौद्योगिकीय उद्योग की रक्षा के लिए विश्व व्यापार संगठन के माध्यम से हमारे पेटेन्ट अधिनियम 1970 में परिवर्तन के लिए दबाव डालकर हमारी व्यापार नीति की समीक्षा कर रहे हैं ताकि उनके पेटेन्ट धारकों को तुरंत अपवर्जी विपणन अधिकार प्राप्त हो सकें और औषधि निर्माण व कृषि रसायन से संबंधित पेटेन्ट आवेदन की डाक बॉक्स प्रणाली बनायी जा सके ।

भारतीय पेटेन्ट अधिनियम 1970 का महत्व :

यह अधिनियम हमारे संविधान के अनुच्छेद 39 में वर्णित राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों में सम्मिलित है और आविष्कारक की उसके आविष्कार में निरंतर रुचि बनाये रखने, अनुसंधान के प्रोत्साहन में सामाजिक रुचि, आविष्कार के उपयोग में उपभोक्ता के हित तथा देश के आर्थिक विकास को ध्यान में रखकर बनाया गया है । आविष्कार की प्रक्रिया के पेटेन्ट की अनुमति प्रदान करने वाला यह अधिनियम कृषि, उद्यान विज्ञान, औषधि विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान तथा दवाओं पर लागू हैं । इसके अंतर्गत पेटेन्ट पूर्ण विनिर्देश के साथ आवेदन की तिथि से 14 वर्ष तक रक्षित हैं । किंतु खाद्यान्न, दवाओं और औषधियों के लिए प्रक्रिया पेटेन्ट की अवधि 7 वर्ष ही है। इसके अनुसार पेटेन्ट उल्लंघन का दावा करने वाले व्यक्ति या संस्था को अपने आरोप के समर्थन में प्रमाण देता होता है ।

आविष्कर्ता और उपभोक्ता दोनों के हितों की

संतुलित ढंग से रक्षा करने वाले इस अधिनियम में पेटेन्ट धारक को अपनी लागत पर आयात के एकाधिकार की अनुमति नहीं है बल्कि पेटेन्ट धारक के हितों पर राष्ट्रीय हितों को प्राथमिकता दी गयी है ।

प्रक्रियाओं के पेटेन्ट की व्यवस्था से औषधि निर्माण, कीटनाशक तथा रासायनिक क्षेत्रों में नवीन प्रक्रियाओं के विकास में सहयोग मिला है । जिससे आत्म निर्भरता और स्थानीय प्रतियोगिता बढ़ी है । इस प्रकार अनुसंधान में प्रोत्साहन तथा नये उत्पादों में वृद्धि होने से हमारी परिस्थितियों के अनुकूल वैकल्पिक प्रौद्योगिकियों का विकास संभव हो सका है ।

पेटेन्ट अधिनियम 1970 में परिवर्तन का प्रभाव :

यदि व्यापार संबंधी बौद्धिक संपदा अधिकारों के परिप्रेक्ष्य में हमारे पेटेन्ट अधिनियम में परिवर्तन कर आविष्कार की प्रक्रिया के पेटेन्ट के स्थान पर उत्पाद का पेटेन्ट लागू किया गया, अनिवार्य लाइसेन्सिंग दुर्बल और अप्रवर्तनीय की गयी, पेटेन्ट की अवधि 20 वर्ष तक बढ़ायी गयी और पेटेन्ट का उल्लंघन होने पर प्रमाण का बोझ आरोपित व्यक्ति या संस्था पर डाला गया तो हमारी अर्थ व्यवस्था को निम्नलिखित गंभीर परिणाम भुगतने पड़ सकते हैं : (1) हमारी वर्तमान अनुसंधान गतिविधियाँ मुख्यत: अनुप्रयुक्त प्रक्रिया अनुसंधान की ओर लक्षित हैं, पेटेन्ट योग्य हो जाने पर नयी दवाओं, रसायनों और कीटनाशकों के लिए ऐसा अनुसंधान पूरी तरह ठप्प हो जायेगा । इस प्रकार भावी अनुसंधान गतिविधियाँ मात्र पेटेन्ट की अवधि समाप्त हुए पुराने उत्पादों के लिए ही निर्देशित रहेंगी । (2) पेटेन्ट प्राप्त उत्पादों की लाइसेन्सिंग पूर्व शर्त होने के कारण भारतीयों द्वारा कोई उत्पाद आविष्कृत नहीं हो सकेगा । (3) देश न केवल पेटेन्टीकृत कच्चे माल बल्कि दवाओं व कीटनाशकों के तैयार माल के लिए पूरी तरह आयात पर निर्भर हो जायेगा क्योंकि विदेशी पेटेन्टधारक अपने उत्पाद का देश में उत्पादन करने में अधिकतम संभव विलंब करेगा । एकाधिकार की व्यवस्था के कारण उत्पाद अत्यधिक मूल्यों पर उपलब्ध होंगे । (4) निर्यात गतिविधियों में बहुत ह्रास हो जायेगा जिससे भुगतान संतुलन की स्थिति गंभीर रुप से खराब हो जायगी । (5) औषधियों और कीटनाशकों के मूल्य में भारी वृद्धि होने के कारण इनकी खरीद करने वाली सरकारी तथा सहायता प्राप्त संस्थाओं का बजट कई गुना बढ़ जायेगा । (6) दवाओं के मूल्यों और देश में उनकी उपलब्धता पर गंभीर प्रभाव के कारण अनेक राष्ट्रीय स्वास्थ्य रक्षण कार्यक्रमों पर बुरा प्रभाव पड़ेगा । (7) विदेशों में कार्यरत हमारे विशेषज्ञों में लगभग 25% अभियंता, 28% चिकित्सक और 5% वैज्ञानिक हैं जबकि अपने देश में इनके लिए अवसर उपलब्ध हैं, पेटेन्ट अधिनियम में परिवर्तन होने पर ये अवसर समाप्त हो जायेंगे और विकसित देशों में प्रतिभा पलायन होने से व्यापक राष्ट्रीय क्षति होगी ।

वांछित कार्यवाही की रूपरेखा :

अपने पेटेन्ट अधिनियम में परिवर्तन के परिणामों का गहन विश्लेषण कर राष्ट्रीय सहमति तुरंत विकसित की जानी चाहिए ।

अपने समुदायों के पारंपरिक ज्ञान व अपनी जैव विविधता की रक्षा, पेटेन्ट के माध्यम से जारी जैव संपदा की चोरी रोकने तथा अपने वैज्ञानिकों, पौध उत्पादकों व पौध उत्पादक संस्थाओं की अनुसंधान विकास गतिविधियों के संरक्षण के लिए प्रभावशाली कानून तुरंत बनाया जाना चाहिए ।

विदेशों में नये उत्पादों को पेटेन्ट प्रदान किये जाने की प्रक्रिया के अनुश्रवण की अपने देश में पर्याप्त व्यवस्था होनी चाहिए और अपनें पौधों, पशुओं व मानवीय आनुवंशिक संसाधनों पर विदेशों में पेटेन्ट प्रदान किये जाने के पहले इन पर अपने स्वामित्व की रक्षा के लिए पर्याप्त वैधानिक प्रणाली स्थापित होनी चाहिए ।

जैव संपदा से संबंधित पारंपरिक ज्ञान के संरक्षण में स्थानीय समुदाय तथा जनजातियों की महत्वपूर्ण भूमिका के परिप्रेक्ष्य में ऐसा तंत्र विकसित होना चाहिए जो पारंपरिक ज्ञात निकायों, इनके अनुप्रयोग व इन पर आधारित आजीविकाओं को मान्यता देता है ।

अपने पारंपरिक ज्ञान आधार के प्रलेखन, संग्रह तथा डेटाबेस निर्माण की सार्थक परियोजना आरंभ होनी चाहिए और उसके दोहन के लिए अनुसंधान-विकास इकाइयां शीघ्र स्थापित की जानी चाहिए ।

❐❐❐

विज्ञान की शिक्षा एवं बच्चों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण

डॉ. राम प्रवेश भगत, वैज्ञानिक,
राष्ट्रीय धातुकर्म प्रयोगशाला,
जमशेदपुर-831 007

इक्कीसवीं सदी की दहलीज पर खड़ा वैज्ञानिक समुदाय जहाँ एक ओर अपनी उपलब्धियों पर फूला न समा रहा होगा वहीं विज्ञान को जन-जन तक न पहुंचाने की विफलता पर शरमाता भी होगा। भारतीय परिप्रेक्ष्य में यह बात सोलह आने सही बैठती है। प्रस्तुत लेख में लेखक ने अपने अनुभवों एवं तथ्यों पर आधारित कुछ जानकारी हमारे समक्ष रखी है। स्कूलों में विज्ञान की शिक्षा को बच्चों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण को बढ़ावा देने में क्या-क्या कदम उठाने चाहिए, प्रस्तुत लेख में इस पर प्रकाश डाला गया है।

इस्पात की नगरी जमशेदपुर में दिनांक **21-23** नवंबर **1997** को राज्य स्तरीय बाल विज्ञान कॉंग्रेस-**1997**(बिहार) का आयोजन किया गया। इन आयोजनों में मुझे आयोजक / निर्णायक के रुप में छात्र-छात्राओं से मिलने तथा उनके प्रोजेक्ट कार्यों का निरीक्षण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उन अनुभवों के आधार पर मैं यह कहना चाहूँगा कि बच्चों में सृजनात्मक शक्ति काफी अधिक होती है। साथ ही बच्चों में शहरीकरण से पनपी समस्याओं, जैसे मोटर वाहन प्रदूषण, एवं ग्रामों की कृषि से संबंधित समस्याओं, जैसे सिंचाई, आदि का आभास है और वे इन्हें सुलझाना चाहते हैं।

प्रस्तुत लेख में अपने अनुभव एवं तथ्यों पर आधारित कुछ निवेदन करना चाहूंगा जो संभवतः बच्चों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण बढ़ाने में मदद कर सके ताकि वे गांव की जनता तक विज्ञान के प्रचार-प्रसार एवं उपयोग में सेतु का कार्य कर सकें।

21 वीं सदी -- भावी वैज्ञानिकों के लिए चुनौतियाँ :

विश्व आज **21** वीं सदी की ओर अग्रसर हो रहा है। यदि हम **20** वीं सदी में हुई घटनाओं का अवलोकन करें तो विज्ञान के दुरुपयोग - सदुपयोग से संबंधित अनेकों खट्टे- मीठे पहलू हमारे समक्ष उभर कर आता कर आते हैं। जहाँ एक ओर तो दो-दो विश्व युद्ध, हिरोशिमा - नागासाकी में बम विस्फोट, रासायनिक तथा जैविक हथियार हैं - तो दूसरी ओर उपग्रहों, इलेक्ट्रॉनिक संचार प्रादुर्भाव, अनेकों महामारियों पर मानव की विजय। इन सब दुष्प्रभावों एवं सुप्रभावों से निर्लिप्त विज्ञान आगे बढ़ता जा रहा है।

21 वीं शताब्दी वैज्ञानिकों के लिए चुनौतियों से भरी होगी। अत्याधुनिक उपकरणों द्वारा जैसे जैसे मानव को घटनाओं एवं पदार्थों की जटिल संरचनाओं को समझने का मौका मिल रहा है, अनुसंधान और भी दुरुह होता जा रहा है, मलेरिया, प्लेग के निर्मूलीकरण के बावजूद उनके नये रुप हमारे समक्ष आ रहे हैं। ऐसे जीवाणु पनप रहे हैं जो पहले से ईजाद की हुई दवा को निष्प्रभावी कर देते हैं। ऐड्स के दस वर्ष के शोध के उपरांत भी हम इसे ठीक से समझ नहीं पाये हैं। हमें भूकंप आदि प्राकृतिक विपदाओं का सामना करना है साथ ही बढ़ती जनसंख्या के लिए भोजन उपलब्ध कराना। इन सबसे महत्वपूर्ण भावी वैज्ञानिकों के लिए चुनौती भरा है - विज्ञान के दुरुपयोग को चंद स्वार्थी लोगों के हाथों से बचाना तथा वैज्ञानिक गतिविधियों को गांवों तक ले जाना।

विज्ञान का अर्थ :

विज्ञान क्या है ? विभिन्न लोगों के लिए विज्ञान का अर्थ, उसकी उपादेयता के अनुसार विभिन्न हो सकता है। उद्योगपति के लिए विज्ञान का अर्थ है - उत्पादन में बढ़ोतरी, तो किसान उसे अपनी पैदावार में वृद्धि के उपकरण के रूप में देखता है। सामान्य नागरिक यह सोचता है कि विज्ञान उसकी कठिनाइयों को आसान बनायेगा। लेकिन बच्चों के लिए विज्ञान प्राकृतिक पहलुओं को सोचने और समझने की क्षमता प्रदान करता है। उसकी जिज्ञासा को उभारने तथा उसे सुलझाने में उत्प्रेरक का कार्य करता है। संभवतः यह अर्थ काफी श्रेयस्कर है और सही मायने में विज्ञान को परिभाषित करता है।

बच्चा इंद्रधनुष, सूर्यग्रहण आदि अनेकों प्राकृतिक पहलुओं को देखकर उसे समझने की कोशिश करता है - इसका उत्तर वह बड़ों से पूछता है। यदि हम लापरवाह और अज्ञानी हैं तो हम इसका संबंध प्राचीन गाथाओं से देकर टाल जाते हैं, पर यदि विचारशील हैं तो चंद्रमा और पृथ्वी की छाया से सूर्य ग्रहण को और अपवर्तन से इंद्रधनुष को समझाने की कोशिश करते हैं। उसकी जिज्ञासा बेहतर ढंग से तब शांत होती है जब हम इन प्रक्रियाओं को मॉडल से समझाते हैं – कार्यकारी मॉडल हो तो और भी उत्तम। फिर वह दूसरा सवाल कर सकता है - सूर्य ग्रहण अमावस्या तथा चंद्र ग्रहण पूर्णिमा को ही क्यों ?

मेरा तो मानना है कि हरेक बच्चे में रचनात्मकता उसी प्रकार की होती है जितनी न्यूटन में थी। बच्चा आज भी सेब को पेड़ से गिरते देखकर सोचता है कि सेब क्यों गिरा, पर उचित सामाजिक - आर्थिक वातावरण न मिलने के कारण अपनी जिज्ञासा को शांत करने में असमर्थ रहता है और उचित मार्गदर्शक के अभाव में सिद्धांत प्रतिपादन से चूक जाता है।

बच्चों की विज्ञान शिक्षा और वैज्ञानिक दृष्टिकोण :

शिक्षा का उद्देश्य सर्वांगीण विकास है - शारीरिक, बौद्धिक तथा नैतिक। शिक्षा वस्तुतः जीवन पर्यंत चलने वाली प्रक्रिया है जिसमें मानव उत्तरोत्तर सीखता है और अपना, समाज एवं देश का विकास करता है। बच्चों में सृजनात्मक प्रतिभा तथा संवेदनशीलता भरी रहती है। विज्ञान की शिक्षा इन्हें उभारने में तथा बच्चों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण पनपाने में अहम् भूमिका निभाती है।

ऐसा माना जाता है कि भारत विश्व का तीसरा ऐसा देश है जहां सबसे अधिक वैज्ञानिक रहते हैं पर क्या कारण है कि हमारे यहां किसी नये विषय पर मूल अनुसंधान नहीं के बराबर है, अंतर्राष्ट्रीय पेटेन्ट कम हैं ? विज्ञान की शिक्षा प्राप्त कर भले ही हम किसी सरकारी, गैर सरकारी शोध एवं विकास संस्थान में या विश्व विद्यालयों में वैज्ञानिक के पद पर कार्य करते हों, पर क्या हमारा दृष्टिकोण वैज्ञानिक है ? हम पाते हैं कि विज्ञान की शिक्षा वज्ञानिक दृष्टिकोण बढ़ाने में पर्याप्त नहीं है। दुर्भाग्यवश विज्ञान की शिक्षा एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण के बीच काफी अंतर हो गया है।

बच्चों में सृजनात्मक, प्रतिभा, संवेदनशीलता भरी रहती है। पर आज के स्कूली जीवन में परीक्षा के बोझ से दबे गृह कार्य तथा स्पर्धा से जूझते हुए बच्चों में सीखने सिखाने की प्रक्रिया कुछ खो-सी गयी है। शिक्षा का उद्देश्य बच्चों में दूसरों के प्रति और अपने वातावरण के प्रति संवेदनशीलता का विकास करना तथा बच्चों में उनके जन्मजात गुण एवं आवश्यकता, साथ ही जिज्ञासा एवं कौतूहल की आपूर्ति करना होना चाहिए। वास्तव में विज्ञान की शिक्षा में एक क्रांतिकारी बदलाव आना चाहिए जब शिक्षा आम जनता से जुड़ेगी एवं व्यवहारिक होगी। महात्मा गांधी का कथन था, 'शिक्षा को ऐसा क्रांतिकारी रूप देना चाहिए जिसमें वह निर्धन से निर्धन ग्रामीण की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके।' विज्ञान की शिक्षा केवल किताबी शिक्षा न होकर हस्तकौशलों को विकसित करने तथा विज्ञान एवं टेक्नोलॉजी के ऐसे विकास के लिए प्रवृत्त करने में मदद कर सके जो जीवन की जरूरतों को पूरी कर सके।

स्पर्धा के इस युग में बच्चों में विज्ञान की शिक्षा दुर्भाग्यवश "टाइप्ड" बनकर रह गयी है। भारतीय प्रौद्योगिक संस्थानों में दाखिला पाने वाले छात्र- छात्राओं में अधिकांश शहरी परिवेशों से होते हैं और उनमें मुख्यतः मेट्रो शहरों से। क्या ग्रामीण परिवेश में पनपने वाले बच्चे तीव्र बुद्धि के नहीं होते ? स्पष्टतः ऐसे कॉलेजों में प्रवेश के लिए एक प्रकार की कोचिंग की आवश्यकता पड़ती है और एक विशेष माहौल की जो

गावों में नहीं है । बच्चों के लिए विज्ञान की शिक्षा इंजीनियरिंग या मेडिकल जैसे व्यावसायिक शिक्षा संस्थानों में प्रवेश की सीढ़ी बनकर रह गयी है । इन शिक्षा संस्थानों के स्नातकों को नौकरी प्राप्त करने में आसानी होती है, अत: वर्तमान सामाजिक - आर्थिक परिवेश में विज्ञान की शिक्षा अधिकांश बच्चे - बच्चियों को और उनसे अधिक उनके अभिभावकों को लुभाती है भले ही उनकी अभिरुचि विज्ञान में न हो ।

विज्ञान का आशय किसी काम को करने का प्रशिक्षण प्राप्त कर लेना भर नहीं है बल्कि सोचने के एक तरीके से भी है और यह अधिक महत्वपूर्ण है । यह असामान्य बात नहीं है कि एक कुशल वैज्ञानिक अपने ज्ञान के क्षेत्र से बाहर उतना अधिक वैज्ञानिक न हो और समझ का इस्तमाल न कर रहा हो ।

सृजनात्मकता और वैज्ञानिक दृष्टिकोंण :

बच्चों की सृजनात्मकता के साथ उसका वैज्ञानिक दृष्टिकोण भी जुड़ा है । वैज्ञानिक दृष्टिकोण किसी तथ्य को तार्किक ढंग से सोचने, समझाने तथा उसकी मीमांसा कर सत्य तक पहुंचने में सहायता करता है । प्राकृतिक वस्तुओं या घटनाओं पर संकलित ज्ञान की विवेचना करना और उसे उन अनुभवों से जोड़ना तथा प्राप्त ज्ञान की तार्किक मीमांसा कर सिद्धांत का प्रतिपादन करना - ये सभी विज्ञान के अध्ययन के चरण हैं । उदाहरणार्थ, पनबिजली कैसे पैदा होती है - इसे उदाहरण द्वारा समझा सकते हैं । ऊंचाई पर रखे बर्तन से एक नली के द्वारा नीचे रखे चक्र पर जल को गिरने दें । चक्र उतनी तेजी से घूमने लगता है । अब चक्र घुमाने से बिजली कैसे पैदा होती है - साधन है तो ठीक अन्यथा उसे बिजली के पंखे का उदाहरण देकर समझाया जा सकता है । विभिन्न प्रकार की ऊर्जाओं की मीमांसा की जा सकती है । बरसात में कपड़े जल्द सूखने में कौन से कारक मदद करते हैं इसे वैज्ञानिक दृष्टिकोण द्वारा आसानी से समझाया जा सकता है ।

बच्चों में विज्ञान के प्रति अभिरुचि बढ़ाने के लिए यह अनिवार्य है और शिक्षक का पावन कर्तव्य है कि मौखिक ज्ञान देने के बजाय यथा संभव उन्हें करके या कराके दिखाया जाय । पुष्प के कौन से अंग हैं ? इसे एक गुड़हल के फूल को लेकर समझाया जा सकता है । वर्षा के जल से वनस्पति रहित मिट्टी का क्षरण होता है । इसे एक प्रयोग द्वारा समझा सकते हैं । बच्चे दो तरह की मिट्टी इकट्ठा करें, एक घास बिना वाली और दूसरी घास सहित । बच्चे खुद देख सकते हैं कि पानी की एक धार डालने पर कौन सी मिट्टी जल्द कटती है ।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण बढ़ाने के लिए बच्चों के मनोविज्ञान और बाल शिक्षा के पहलुओं को समझाना होगा । जाओ और आओ में बहुत अंतर है । बच्चों के सीखने की संभावना तभी अधिक बढ़ जाती है जब सिखाने वाला खुद सिखाने के लिए तत्पर हो । भले ही वह समझाता हो, पर वह कौतुहल से उस प्रयोग और घटना को देखे जितना कि बच्चे देखते हैं और बाद में उन्हें वह समझाने की कोशिश करे ।

वैज्ञानिक चेतना और विकास :

भारत को विश्व की तृतीय महान वैज्ञानिक शक्तिवाले देश के रुप में माना जाता है । यहाँ के वैज्ञानिकों ने लोगों के जीवन स्तर को ऊँचा उठाने, राष्ट्रीय संसाधनों का उपयोग करने, सूर्य तथा महासागर की धारा एवं लहरों से ऊर्जा उत्पन्न करने, समुद्र के गर्भ के बहुधात्विक पिंडों को निकालने और उनका परिष्करण करने तथा बीमारी, गरीबी एवं अज्ञानता को समाप्त करने में अहम् भूमिका निभाई है । कृषि, दूरसंचार, अंतरिक्ष के क्षेत्र में भारत में प्रशंसनीय कार्य हुए हैं । फिर भी यह विडंबना है कि भारत की अधिकांश जनता, जो विशेषकर गाँवों में रहती है, कुपोषण, अशिक्षा, बीमारियों एवं अंधविश्वास से ग्रसित है । कारण स्पष्ट है - विज्ञान की चेतना उन तक नहीं पहुँच पायी है । पंडित नेहरु का मानना था केवल वैज्ञानिक समझ और वैज्ञानिक ज्ञान द्वारा ही देश के हर आदमी को आवश्यकता के अनुसार भौतिक, सांस्कृतिक और आवश्यक सुविधाएं उपलब्ध करायी जा सकती हैं । और इसी के द्वारा कल्याणकारी राज्य के सपना को साकार किया जा सकता है ।

विज्ञान को गावों की जनता तक पहुँचाने में विज्ञान के छात्र एवं शिक्षक अपना महत्वपूर्ण योगदान कर सकते हैं । बच्चों में सेवा भावना भरी रहती है और इस सेवा भावना का समुपयोजन कर ग्रामों में वैज्ञानिक चेतना का प्रसार किया जा सकता है । इसके लिए

शिक्षा के पाठ्यक्रम में आमूल परिवर्तन लाना अनिवार्य है । यह श्रेयस्कर होगा कि आठवीं और ग्यारहवीं कक्षा के मध्य तीन से लेकर छः महीने के दो ऐसे प्रोजेक्ट कार्य को अनिवार्य बना दिया जाय जो गाँव के विकास एवं ग्रामीण जनता में चेतना जगाने से संबंधित हों । सिंचाई, ऊर्जा की वैकल्पिक व्यवस्था, धूम्रपान-मदिरापान न करना, अंधविश्वास, कुपोषण दूर करना, उचित पौष्टिक भोजन की जानकारी, टीके एवं अन्य महत्वपूर्ण कार्य इन कार्यक्रमों में शामिल किये जा सकते हैं । इनका वित्तीय भार ग्रामपंचायत, संबंधित मंत्रालय से अनुदान तथा निकटवर्ती उद्योग मिल कर सकते हैं । विज्ञान को उद्योग से जोड़ने के लिए 13 वीं से 15 वीं कक्षा तक के छात्र छात्राओं के लिए उद्योगों में व्यवसायिक प्रशिक्षण उनके पाठ्यक्रम में शामिल किया जाना आज के समय की माँग है । इसी प्रकार ग्रामीण परिवेश में पले हुए विज्ञान के छात्र - छात्राएं गाँवों से संबंधित उपर्लिखित प्रोजेक्ट कार्य के अतिरिक्त उद्योग एवं शहरीकरण की समस्याओं - जैसे वातावरण प्रदूषण, पर प्रोजेक्ट कार्य कर सकते हैं ।

देश की अर्थ शक्ति एवं भौतिक शक्ति से महत्वपूर्ण है उसकी जनशक्ति । 21 वीं सदी का भविष्य कैसा होगा इसे आज के बच्चे ही निर्धारित करेंगे । दुर्भाग्यवश गरीबी, पढ़ने के बाद भी बेरोजगार रहने की चिंता, अभिभावकों का उन्हें अपने सामर्थ्य से अधिक बनाने की लालसा एवं स्पर्धा के बीच, बच्चों की सृजनात्मक शक्ति एवं प्रतिभा खो सी गयी है । इस समस्या का समाधान शिक्षा एवं विशेषकर विज्ञान की शिक्षा को व्यवहारिक एवं विभिन्न रुप देकर उन्हें गाँवों एवं उद्योगों तक पहुँचाने में तथा बच्चों में उद्यमता का विकास करने में है । इसके लिए स्वार्थपरता एवं राजनैतिक उठा-पठक से ऊपर उठकर शिक्षा में आमूल परिवर्तन की आवश्यकता है ।

विज्ञान के इस युग में आध्यात्म की आंतरिक शक्ति को महत्व दिया जाना तथा विज्ञान पर मानवता की आध्यात्मिक चेतना के प्रभाव को स्वीकार करना मानव की खुशहाली का कारण बन सकता है और इसकी परिकल्पना हमारे यहाँ मनीषियों ने अत्यंत ही सुंदर तरीके से की है । "ज्ञान विज्ञानं च ।"

❐❐❐

मेंढक एक उपयोगी जंतु

(पृष्ठ - 15 का शेष भाग)

प्रकोप से फसलों को बचाये रखने के लिए रसायनिक कीटनाशकों का अंधाधुंध प्रयोग बढ़ा है । कीट-नाशकों के इस अंधाधुंध प्रयोग ने दीर्घकालिक पर्यावरणीय प्रदूषण समस्याओं को जन्म देने के साथ ही साथ कृषि उत्पादन की लागत को भी कई गुना बढ़ा दिया है ।

अतः अब आवश्यकता इस बात की है कि उपरोक्त तथ्यों के मद्देनजर हम मेंढकों के प्रति अपनी सोच में परिवर्तन लायें और मानव समाज के लिए विषपान करने वाले प्रकृति प्रदत्त इस अनूठे उपहार को संजोकर रखें और उसकी वंश-वृद्धि के लिए प्रयास जारी रखें ।

और अंत में चलते-चलते : कैलीफोर्निया के एक कस्बे में मेंढकों की लंबी कूद प्रतियोगिता आयोजित की गयी । प्रतियोगिता के अंतिम दौर में 50 मेंढकों ने लंबी छलांग का प्रदर्शन किया । प्रतियोगिता का विजेता बना तीन टांग वाला एक अनाथ मेंढक जो कुछ दिनों पहले एक नहर के किनारे घायलावस्था में मिला था ।

❐❐❐

लेसर-शीतलन प्रणाली : परिचय तथा संकल्पना

डॉ. बी. एन. जगताप एवं आसावरी मराठे
लेसर एवं प्लाज्मा तकनीकी प्रभाग,
भा. प. अ. केंद्र, मुंबई 400 085

पिछले दो दशकों में अनावेशित (neutral) परमाणुओं के परिचालन (manipulation) व उनकी गति तथा स्थिति पर नियंत्रण हेतु अनेक तरीके अपनाये गये, जिनमें लेसर तकनीक का महत्वपूर्ण योगदान रहा । 'लेसर किरणों द्वारा शीतलन' की कल्पना दो वैज्ञानिक वर्गों द्वारा स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय, अमरीका, से हैन्स (Hansch) व शैलो (Schawlow) तथा वाशिंगटन विश्वविद्यालय, अमरीका से वाईनलैंड (Wineland) व डेह्मेल्ट (Dehmelt) द्वारा 1975 में स्वतंत्र रूप से की गयी । इस परिकल्पना के अनुसार परमाणु-समूह की गतिज ऊर्जा लेसर किरणों के प्रयोग से घटायी जाती है, जिससे यह समूह कम गति का होने के कारण कुछ समय तक एक विशिष्ट स्थान (space) में बद्ध हो जाता है । पिछले दस वर्षों में इस क्षेत्र में बहुत सी सफलताएँ प्राप्त हुईं । उदाहरण के तौर पर ऑप्टिकल मोलेसिस का प्रदर्शन, मैग्नेटो-ऑप्टिक ट्रैप (MOT), लेसर शीतलित परमाणु-घड़ियाँ, अति-शीत परमाणुओं का संघट्टन (collision) इत्यादि । 1995 में वैज्ञानिकों ने बोस-आइंनस्टाइन संघनन (कन्डेन्सेशन) (BEC) का प्रदर्शन कर सफलता का एक और शिखर प्राप्त किया । गत वर्ष इस क्षेत्र में भौतिकी का नोबेल पुरस्कार मूलभूत योगदान देने वाले डॉ. एस. चू, डॉ. डब्लू. डी. फिलिप्स तथा डॉ. सी. कोहेन - तनौद्जी ने प्राप्त किया । भौतिक विज्ञान की न्यून-ताप भौतिकी, अतिशीत परमाणुओं का संघट्टन, परमाणु व्यतिकरण मिति (interferometry), उच्चविभेदन स्पेक्ट्रममिति जैसी शाखाओं में इस तकनीक के प्रयोग से उन्हें और उन्नत करने तथा प्रकृति के मूलभूत नियम परखने का एक परिमाण हमें मिला है । ये सभी शाखाएँ अपने आप में महत्वपूर्ण हैं । पिछले 20 सालों में इस क्षेत्र में घटी महत्वपूर्ण घटनाओं की सूची तालिका-1 में दी गयी है । आज यह क्षेत्र अधिकाधिक वैज्ञानिकों को अपनी ओर आकर्षित कर रहा है । भविष्य में भी इस तकनीकी का महत्व बढ़ता ही जायेगा ।

कुछ वर्षों पूर्व तक भारत में, इस तकनीक के प्रति उदासीनता थी, परंतु धीरे-धीरे यह दृश्य बदल रहा है । आज राष्ट्रीय स्तर की कई उन्नत प्रयोगशालाएं इस प्रौद्योगिकी को अपनाने में तथा उसके विकास में रुचि रखती हैं । भा. प. अ. केंद्र में, हाल ही में, इस विषय पर एक निश्चित कार्यक्रम प्रारंभ हुआ भी है ।

हैन्श - शैलो प्रस्ताव :

यह प्रस्ताव प्रमुखतः मुक्त परमाणुओं के लिए उपयुक्त है । चित्र-1 'अ' में दो ऊर्जा-स्तर युक्त एक परमाणु को दिखाया गया है । इस परमाणु को उसकी अनुनाद रेखा (resonance line) के समीप स्वमस्वरित (tuned) लेसर किरण से किरणित (irradiate) किया जाता है । प्रति एक फोटॉन के अवशोषण से यह परमाणु फोटॉन की दिशा में $\Delta P = h\mathbf{k}/2\pi$ संवेग प्राप्त कर लेता है, तथा । e_1> ऊर्जा स्तर में पहुँच जाता है । यहां $\mathbf{k}$ तरंग-सदिश है । तदनंतर होनेवाला स्वतःउत्सर्जन (spontaneous emission) समदैशिक (isotropic) होने के कारण ऐसे अनेक अवशोषण-उत्सर्जन चक्रों (n) के बाद, संवेग में आनेवाले परिवर्तन का औसत शून्य हो जाता है, जबकि अवशोषण के कारण होनेवाला संवेग परिवर्तन बढ़कर $nh\mathbf{k}/2\pi$ हो जाता है । इस प्रकार बार-बार फोटॉन प्रकीर्णन (scat-tering) के कारण परमाणु पर लेसर किरणों की दिशा में प्रकीर्णन बल कार्य करता है । इस प्रकीर्णन बल का उपयोग परमाणु की गति में मंदन (deceleration)

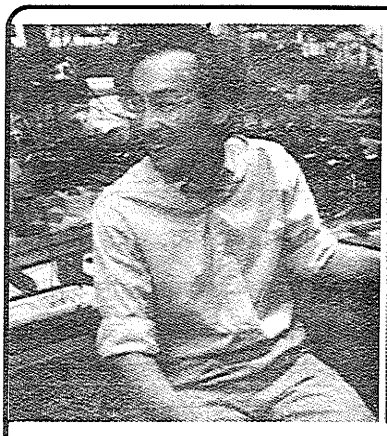

डॉ. स्टीवेन चू

डॉ. सी. कोहेन-तनौद्जी

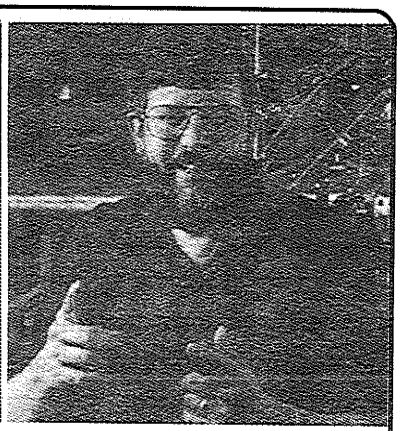

विलियम फिलिप्स

अनावेशित परमाणुओं को लेसर किरणों द्वारा अवकाश में बद्ध करने तथा उनके शीतलन के क्षेत्र में विविध तंत्र विकसित करने में महत्वपूर्ण योगदान देनेवाले डॉ. स्टीव्हन चू (स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय), डॉ. सी. कोहेन-तनौद्जी (College-de-France and Ecole Normale Superieure) तथा विलियम फिलिप्स (नेशनल इन्स्टिट्यूट ऑफ स्टेन्डर्डस एंड टेक्नोलॉजी) को 1997 के नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

1980 के दशक में डॉ. फिलिप्स तथा उनके सहयोगियों ने लेसर किरणों के उपयोग से सोडियम परमाणुओं के शीतलन तथा चुंबकीय क्षेत्र के प्रयोग से उन्हें अवकाश (space) में बद्ध करने का सफलतापूर्वक प्रदर्शन किया था।

इसी दशक में डॉ. कोहेन तनौद्जी ने डॉप्लर सीमा से नीचे शीतलन कि दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया ('सिसायफस इफेक्ट')। 1988 में उन्होंने फोटॉन-प्रतिक्षेप सीमा से भी कम तापमान तक परमाणुओं के शीतलन का प्रदर्शन किया।

डॉ. चू ने परमाणुओं के अतिरिक्त अन्य अनावेशित कणों के शीतलन तथा 'ट्रैपिंग' में लेसर किरणों के उपयोग पर महत्वपूर्ण अनुसंधान किया है।

लाने के लिए किया जा सकता है। इस परिकल्पना को और स्पष्ट करने के लिए सोडियम परमाणु का उदाहरण लेते हैं, जहां लेसर किरण 3s - 3p संक्रमण (transition) से अनुनादित है (E_{3p}-E_{3S}~ -2 eV)। एक फोटॉन के परमाणु द्वारा अवशोषण से उसकी गति में $\Delta V=\Delta P/M \sim 3$ सेमी./से. जितना बदलाव आ जाता है। यहां M सोडियम परमाणु का द्रव्यमान दर्शाता है। 500 K तापमान में सोडियम परमाणु का औसत तापीय वेग 6×10^4 सेमी./से. होता है। इस परमाणु को स्थिर करने के लिए $n = 2 \times 10^4$ फोटॉन प्रकीर्णन घटनाएं आवश्यक हैं। सोडियम के 3p ऊर्जा स्तर का जीवन काल (life time) τ = 16 नैनो-सेकंड होने के कारण परमाणु के शीतलन के लिए $n\tau$ = 300 नैनो सेकंड समय की आवश्यकता होगी।

ऊपर वर्णित प्रकीर्णन बल का उपयोग आवेश रहित परमाणुओं के किरण की गति का मंदन करने के लिए किया जा सकता है। परमाणुओं के समूह के लिए – जिनकी गति किसी भी दिशा में हो सकती है केवल एक लेसर-किरण पर्याप्त नहीं होती। हैन्स और शैलो के प्रस्ताव अनुसार यदि यह परमाणु-समूह विरुद्ध दिशा में जानेवाले लेसर की किरणों से - जो परमाणु की अवशोषण रेखा के सापेक्ष अवरक्त-विस्थापित है (red-shifted) - किरणित किया गया, तब उन पर परमाणुओं की गति के विरुद्ध दिशा में बल कार्य करता है। डॉप्लर-विस्थापन के कारण परमाणु केवल वही फोटॉन अवशोषित करते हैं, जो उनकी गति के विरुद्ध दिशा में गतिमान हों। उदाहरणार्थ

चित्र-1 : हैन्स-शैलो प्रस्ताव

(अ) द्वि-ऊर्जास्तरीय परमाणु

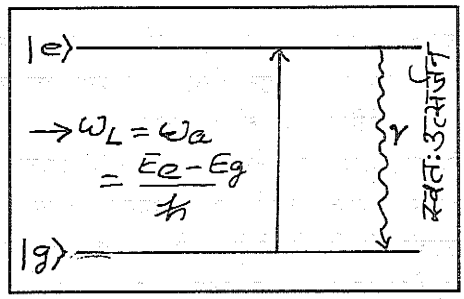

(ब) परमाणु किरण का शीतलन

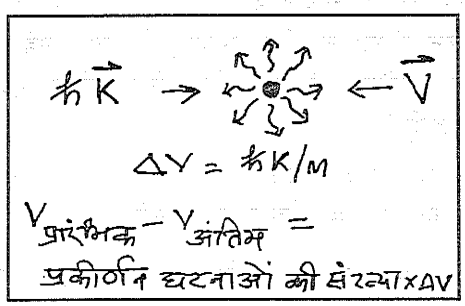

(स) परमाणु-समूह का शीतलन

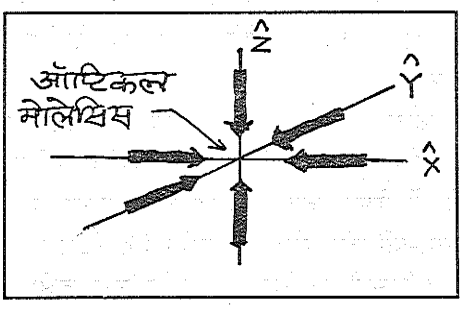

तालिका-1 : 'लेसर शीतलन' के क्षेत्र में घटी महत्वपूर्ण घटनाओं की सूची

1975	लेसर शीतलन की परिकल्पना	हैन्स तथा शैल्लो, वाइनलैंड व डेह्मेल्ट
1984	सोडियम परमाणुओं का 190-17 मिके. (mK) तक शीतलन	रूसी दल (लेटोकोव व सहयोगी)
1985	सोडियम परमाणु	
	100 मिके.	NIST दल, कोलोरेडो
	50 मिके.	बेल प्रयोगशालाएं
1988	सोडियम - 240 माके.	
	सोडियम - 100 माके.	बेल प्रयोगशालाएं
	सोडियम - 2.4 माके.	NIST दल
1990	सीज़ियम - 3 माके.	
	हीलियम* - 2 माके.	इकोल-नार्मल दल
	सीज़ियम - 1.1 माके.	NIST दल
1994	सीज़ियम - 700 नैके.	NIST दल
1995	रुबिडियम - 170 नैके.	NIST दल
	20 नैके.	
	बोस-आइंस्टाइन कन्डेसेशन का प्रदर्शन	
1997	भैतिक शास्त्र में नोबेल पुरस्कार	एस. चू, डब्लू. डी. फिलिप्स तथा सी. कोहेन-तनौद्जी
?	1 पिकोकेलविन (pK)	?

$+V_x$ गति से जाने वाला परमाणु अवरक्त-विस्थापन के कारण +X दिशा में संचरित लेसर किरण अवशोषित नहीं कर सकेगा जबकि -X दिशा में संचरित लेसर-किरण नील विस्थापन के कारण अवशोषित कर सकेगा। इस कारण $+V_x$ गति से भ्रमण करने वाले परमाणु पर केवल -X दिशा में प्रकीर्णन बल कार्य करता है। जब परमाणु समूह छः दिशाओं से ($\pm X, \pm Y, \pm Z$) संचरित लेसर किरणों द्वारा किरणित किया जाता है तब हर परमाणु पर उसकी गति की विपरीत दिशा में प्रकीर्णन-बल कार्य करता है। फलस्वरूप परमाणु-समूह का तापमान घटता है। इस प्रकार, इस प्रस्ताव के अनुसार डॉप्लर-विस्थापन के कारण विकिरण बल जो शीतलन का कारण है – परमाणु की गति पर निर्भर होता है। परिणामस्वरूप इस प्रक्रिया को 'डॉप्लर शीतलन' कहा जाता है। छः लेसर किरणों से शीतलित परमाणु-समूह ऑप्टिकल मोलेसिस के नाम से जाना जाता है। ऑप्टिकल मोलेसिस में परमाणु $F = -\alpha V$ अवमंदक बल का

चित्र-2 : विविध शीतलन सीमाएं तथा संबंधित शीतलन प्रणालियां

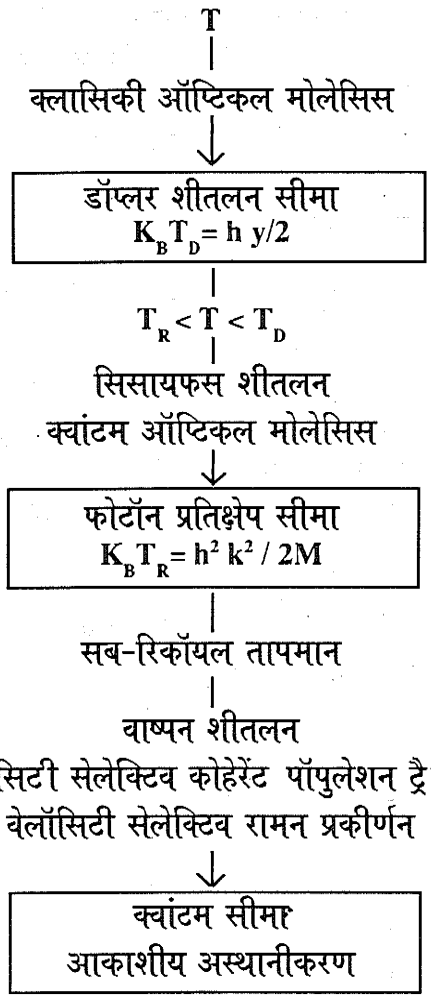

अनुभव करते हैं, जैसे वह अनेक फोटॉन से बने हुए एक श्यान तरल (Viscous Fluid) में भ्रमण कर रहे हों। यहां, α मंदक कारक है।

परंतु इस तकनीकी के उपयोग से क्या किसी भी तापमान तक परमाणु-शीतलन संभव है ? अथवा इस प्रक्रिया की कोई आंतरिक सीमा है ? इससे जो न्यूनतम तापमान प्राप्त किया जा सकता है, उसे डॉप्लर शीतलन सीमा कहते हैं। डॉप्लर शीतलित परमाणुओं की न्यूनतम गतिज ऊर्जा शीतलन के लिए जिस संक्रमण का प्रयोग किया गया है, उससे संबंधित ऊर्जा बैंड की चौड़ाई की श्रेणी (order) की होती है। इस तापमान सीमा का उद्गम समझने के लिए एक परमाणु का उदाहरण लेते हैं, जिसकी औसत गति शून्य हो गयी है। इस परमाणु द्वारा +X अथवा -X इन दोनों में संचरण करनेवाले फोटॉन अवशोषित करने की प्रायिकता एक समान है। इस कारण, अवशोषण के बाद उसे +X अथवा -X दिशा में गति प्राप्त होती है। इस प्रकार स्वतःउत्सर्जन के बाद उसकी गति किसी भी दिशा में हो सकती है। अंततः परमाणु ऐसी अवस्था प्राप्त करता है, जहां उसकी औसत गति शून्य हो जाती है, परंतु उसकी गति के वर्ग का औसत शून्य से अधिक होता है। इसी कारण, डॉप्लर शीतलन सीमा से नीचे उसका शीतलन नहीं हो सकता। डॉप्लर शीतलन सीमा निम्नलिखित सूत्र से प्राप्त होती है :

$$K_B T = h\gamma/4\Pi$$

यहां K_B = बोल्ट्जमैन स्थिरांक

γ = परमाणु की उत्तेजित अवस्था से मूल अवस्था में लौटने की क्षय दर (decay rate)।

सोडियम परमाणु के लिए यह सीमा $T_D = 240$ माके. (μK) है, तथा सीजियम परमाणु के लिए $T_D =$ 120 माके. है।

फोटॉन तथा परमाणु के बीच संवेग-विनिमय का उपयोग लेसर शीतलन तंत्र में परमाणुओं की गतिज ऊर्जा घटाने में किया जाता है। हर बार परमाणु का संवेग विनिमय-परिवर्तन फोटॉन के संवेग $hk/2\pi$ के समान होता है जिससे संबंधित एक फोटॉन-प्रतिक्षेप ऊर्जा (recoil energy) $E_R = h^2k^2/4M\pi$ होती है। इस ऊर्जा का ऊष्मीय ऊर्जा ($K_B T_R$) से समीकरण कर के प्रतिक्षेप तापमान का गणन किया जाता है। सोडियम परमाणु के लिए प्रतिक्षेप तापमान का मान 2.4 माके. है। सिसायफस शीतलन तकनीक, जिसे डॉ. कोहेन-तद्नौजी ने विकसित किया था द्वारा परमाणुओं का डॉप्लर शीतलन सीमा से कम तापमान तक मंदन किया जा सकता है। इससे भी कम तापमान प्राप्त करने

का एक तरीका यह है कि लेसर किरणों के अलावा किसी और तकनीक का प्रयोग करें, क्योंकि प्रतिक्षेप तापमान की सीमा का उद्गम लेसर फोटॉन की ऊर्जा से संबंधित है। वाष्पन 'शीतलन' (evaporative cooling) एक ऐसी ही तकनीक है। इस पद्धति का - जिसमें प्रथम लेसर किरण तथा बाद में वाष्पन शीतलन तकनीक का प्रयोग किया जाता है अवलंबन करने से नैनोकेल्विन (nK) तक तापमान प्राप्त किया जा सकता है।

लेसर किरणों पर आधारित पद्धतियां भी प्रतिक्षेप सीमा पार कर सकती हैं। उदाहरणस्वरूप वेलॉसिटी सिलेक्टिव कोहेरन्ट पॉप्युलेशन ट्रैपिंग (VSCPT) तकनीक में शीतलन की प्रक्रिया परमाणुओं के उनसे कम गतिमान परमाणुओं में विसरण होने के कारण साध्य होती है। साथ ही ऐसा ऊर्जा स्तर प्राप्त करते हैं, जिससे उनमें व फोटॉन में पारस्परिक क्रिया संभव नहीं होती। इस तकनीक का डॉ. कोहेन-तद्नौजी के दल द्वारा सफलतापूर्वक प्रदर्शन किया गया है। ऐसी ही एक अन्य तकनीक है वेलॉसिटी सिलेक्टिव रामन प्रकीर्णन (VSRS) जिसका उपयोग वैज्ञानिक चू ने प्रतिक्षेप सीमा से नीचे परमाणुओं को शीतलित करने के लिए किया। चित्र-2 में विविध शीतलन सीमाएं और संबंधित तकनीकों की सूची दी गयी है। परमाणु-शीतलन पर अंतिम सीमा अनिश्चितता संबंध से आती है।

प्रकाशीय (ऑप्टिकल) मोलेसिस : प्रयोग

लेसर शीतलन प्रक्रिया के अंतर्गत, परमाणुओं की गति निरंतर घटती रहती है, जिससे उनका डॉप्लर विस्थापन भी निरंतर घटता जाता है। इस कारण परमाणु लेसर किरणों से विस्वरित (non-resonant) होकर शीतलन-प्रक्रिया रुक जाने की संभावना होती है। इसका उपाय करने के लिए विस्तृत बैंड वाले लेसर किरण का प्रयोग करना उचित नहीं होता, क्योंकि इससे न्यूनतम तापमान का मान बढ़ता है। न्यूनतम तापमान $K_B T_D = h\Gamma/4\pi$ सूत्र से प्राप्त होता है। यहां Γ चिन्ह γ तथा बैंड की चौड़ाई ($\Delta\omega$) में से अधिक मान की राशि दर्शाता है।

फिर संकीर्ण (नैरो) बैंड लेसर के साथ इस समस्या का निराकरण कैसे किया जा सकता है ? इस दिशा में अपनाये गये दो प्रमुख प्रस्तावों की चर्चा हम यहां करेंगे।

पहले प्रस्ताव में परमाणुओं के शीतलन के साथ लेसर की आवृत्ति इस प्रकार निरंतर बदली जाती है, कि यह बदलाव उनके डॉप्लर विस्थापन की क्षतिपूर्ति कर देता है। इस तकनीकी को चर्प्ड शीतलन (Chirped Cooling) कहा जाता है। इस तकनीकी के विकास में डॉ. चू का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

दूसरे प्रस्ताव के अनुसार, जिसे ज़ीमन समस्वरित शीतलन कहते हैं, लेसर-आवृत्ति स्थिर रखी जाती है, तथा परमाणु समूह के क्षेत्र में चुंबकीय क्षेत्र प्रस्थापित किया जाता है, जो स्थानानुसार बदलता (spatially varying field) है। इस प्रकार डॉप्लर विस्थापन की क्षतिपूर्ति होती है। डॉ. फिलिप्स का इस तकनीक के विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। दो विधियों में डायोड लेसर की उपलब्धता के कारण चर्प्ड शीतलन अधिक सुलभ हो गया है।

क्षारीय धातुओं के परमाणुओं में ($ns \rightarrow np$) संक्रमण बहुत प्रभावी होता है। सोडियम के लिए इस संक्रमण की ऊर्जा 589 नैनोमीटर तरंग दैर्ध्य के तुल्य होती है, तथा सीजियम के लिए यह 852 नैनोमीटर तरंग दैर्ध्य के तुल्य होती है। ये तरंग-दैर्ध्य समस्वरणीय संकीर्ण बैंड, संसत तरंग डायोड लेसर से सुलभता से प्राप्त किये जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त क्षारीय धातुओं में पर्याप्त तापमान में वाष्प-दाब अधिक होता है। परिणामस्वरूप क्षारीय धातुओं का लेसर शीतलन में अधिक प्रयोग किया जाता है। परंतु शून्येतर नाभिकीय प्रचक्रण (nonzero nuclear spin) के कारण इसमें कठिनाई आ जाती है। उदाहरणस्वरूप सोडियम परमाणु को लीजिए जिसका नाभिकीय प्रचक्रण 3/2 है। चित्र-3 में सोडियम के $^2S_{1/2}$--$^2P_{3/2}$ संक्रमण संबंधित अतिसूक्ष्म (hyperfine) ऊर्जा-स्तरों का आरेख दिया है। लेसर - शीतलन हेतु $S_{1/2}$, $F = 2 \rightarrow P_{1/2}$, $F=3$ संक्रमण का उपयोग किया जाता है। शीतलन प्रक्रिया में बाधा न आने के लिए

चित्र-3 : ^{23}Na (I=3/2) परमाणु के लेसर शीतलन संक्रमणों का व्यवस्थात्मक निरूपण

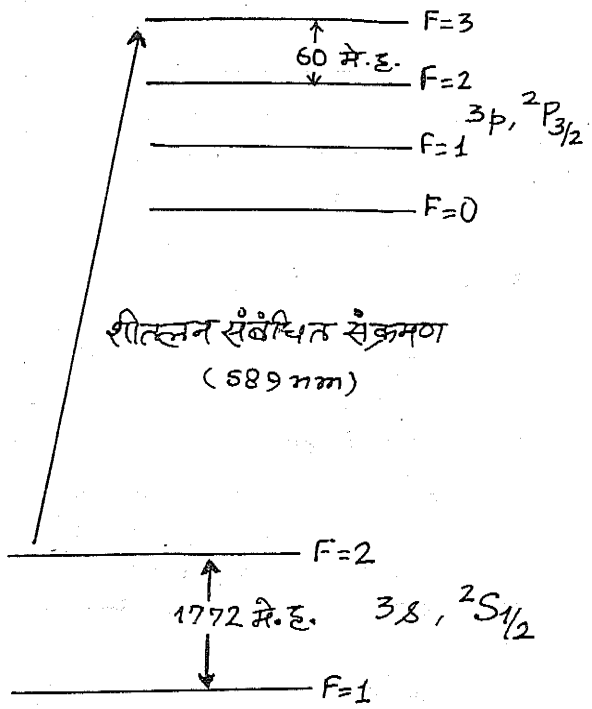

सोडियम परमाणु क इन्हीं दो ऊर्जा अवस्थाओं में रहना आवश्यक है।

परंतु $^2P_{3/2}$, F=3 तथा F=2 अतिसूक्ष्म स्तरों में केवल 60 मैगाहर्ट्ज ऊर्जा अंतर होने के कारण, $^2S_{1/2}$, F=2 अवस्था से परमाणु $^2P_{3/2}$, F=2 अवस्था पाकर स्वत:उत्सर्जन से $^2S_{1/2}$, F=1 मूल अवस्था में लौट सकता है। ऐसे परमाणु शीतलन प्रक्रिया में भाग नहीं ले सकते। $^2S_{1/2}$, F=1अवस्था पाये हुए परमाणुओं की संख्या बढ़ते रहना, शीतलन प्रक्रिया के लिए अनिष्ट है। इसके लिए एक उपाय यह है, कि ऐसे परमाणु को दूसरे लेसर की सहायता से $^2S_{1/2}$, F = 1 अवस्था से $^2P_{3/2}$, F=2 अवस्था में उत्तेजित किया जाये। चित्र-4 में ऑप्टिकल मोलेसिस की प्रायोगिक रचना दिखायी गयी है। इसमें एक अत्युच्च निर्वात कक्ष है, जिसमें लेसर किरणों के लिए छः प्रवेश मार्ग हैं। वैज्ञानिक चू के दल ने इस प्रयोग में 1 मैगाहर्त्स बैंड-चौड़ाई, 2 मिमी. त्रिज्या तथा 10 मिलीवॉट शक्ति युक्त लेसर किरणों का प्रयोग किया तथा 1 गीगाहर्त्स (GHz)/1.4 मि.से. आवृत्ति चर्प का प्रयोग किया। संबंधित ऑप्टिकल मोलेसिस का लोडिंग (loading) काल लगभग 400 मि.से. था।

ऑप्टिकल मोलेसिस में शीतलित परमाणु बाह्य बलों के प्रति बहुत संवेदनशील होते हैं। बाह्य बलों के प्रभाव से उन्हें अपवहन गति (drift velocity) प्राप्त होती है। सोडियम के मोलेसिस में गुरुत्वाकर्षण बल से प्राप्त हुई अपवहन गति लगभग 0.37 मिमी./से. होती है। अर्थात डॉप्लर शीतलन सीमा प्राप्त करनेवाले परमाणुओं की ऊष्मीय गति इससे कई गुना अधिक होती है। विरुद्ध दिशा में संचरित लेसर किरणों की असमान तीव्रता (intensity) भी परमाणुओं की अपवहन गति का कारण बन सकती है। सैद्धांतिक अध्ययनों के अनुसार 1% असमानता के कारण परमाणु 3 सेमी./से. अपवहन गति तथा 0.5 सेमी. त्रिज्या के मोलेसिस में 167 मिसे. अपवहन काल प्राप्त करते हैं। यह समय मोलेसिस के जीवन काल से बहुत कम है। परमाणुओं का संतृप्ति प्राचल (saturation parameter) भी संतृप्ति विस्तृतीकरण (saturation broadening) द्वारा ऑप्टिकल मोलेसिस में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

लेसर शीतलित परमाणुओं का तापमान : मापन तथा संकल्पना

लेसर शीतलित परमाणुओं का तापमान उनकी गति का प्रतिदीप्ति स्पेक्ट्रमदर्शिकी (Fluorescence Spectroscopy) द्वारा मापन करके पाया जाता है। इसमें सबसे सुलभ तरीका 'उड्डयन काल प्रतिदीप्ति' (time of flight fluorescence) है। इसमें ऑप्टिकल मोलेसिस के लिए आवश्यक लेसर किरण बंद किये जाते हैं (t=o)। मोलेसिस के स्थान से विशिष्ट अंतर पर एक प्रोब लेसर-किरण स्थित होता है। परमाणुओं के प्रोब के निकट स्थान में आगमन की सूचना (t = t) स्थान से प्राप्त हुई प्रतिदीप्ति में हुए बदलाव से मिलती है। उनका प्रोब-स्थान में आगमन-काल तथा वितरण से परमाणुओं का मोलेसिस में वेग-वितरण तथा तापमान जाना जा सकता है।

चित्र-4 : ऑप्टिकल मोलेसिस का व्यवस्थात्मक निरूपण

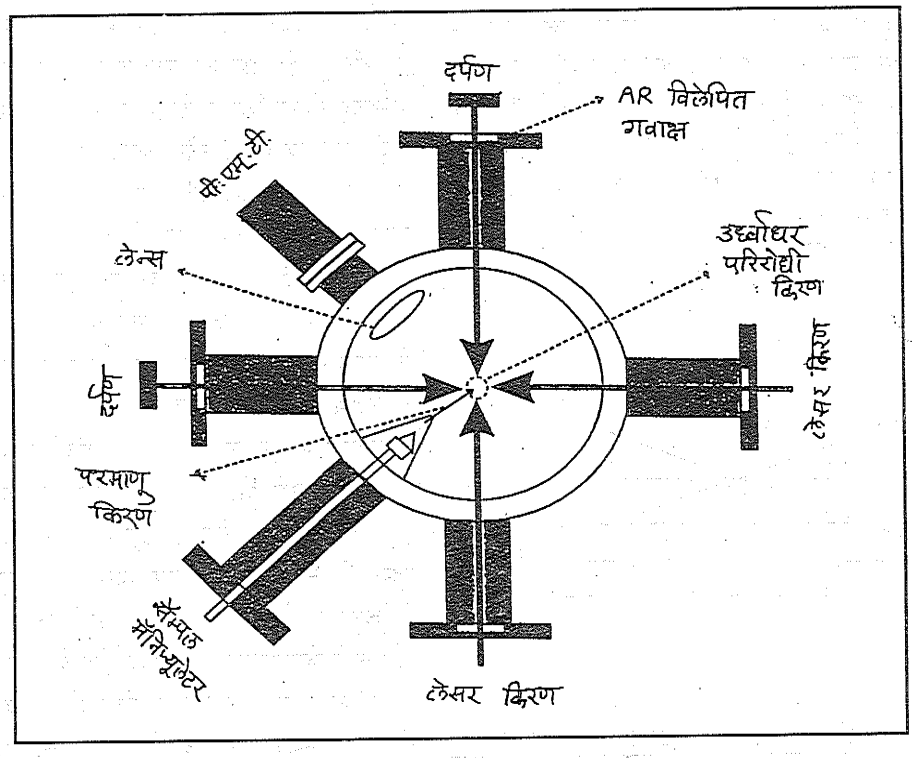

लेसर-शीतलन के प्रारंभिक काल में ताप-मापन की एक और तकनीक अपनायी गयी थी – 'मुक्ति व प्रग्रहण पद्धति' (release & capture method)। इसमें मोलेसिस से प्राप्त हुई प्रतिदीप्ति का भिन्न समय-खंडों पर मापन किया जाता है। प्रथमतः जब मोलेसिस परमाणुओं से परिपूर्ण होता (fully loaded) है, तब उससे प्राप्त प्रतिदीप्ति (I_0) का मापन किया जाता है। उसके बाद लेसर किरण बंद करके परमाणुओं का कुछ समय बाद फिर लेसर किरणों द्वारा मोलेसिस में बचे हुए परमाणुओं को उसी स्थान पर बद्ध (रोक) कर उनकी प्रतिदीप्ति (I) का मापन किया जाता है। I/I_0 का T_{off} के साथ आलेख हमें परमाणुओं की मोलेसिस की परिपूर्ण स्थिति में वेग-विवरण तथा तापमान के बारे में सूचित करता है। प्रतिदीप्ति मापन के लिए CCD कैमरे के उपयोग से मापन की परिशुद्धि बढ़ती है।

अनावेशित परमाणुओं के लिए प्रकाशीय पाश :

'पाश' शब्द विशिष्ट स्थान में बद्ध परमाणु तथा उनके समूह को सूचित करता है। क्योंकि मोलेसिस में उन पर कार्य करने वाला बल उनकी गति पर आधारित होता है, सही अर्थ में ऑप्टिकल मोलेसिस के लिए ट्रैप का काम नहीं करता। मोलेसिस का जीवन-काल भी यही सूचित करता है। प्रकाशीय ट्रैप की संकल्पना में परमाणुओं को विशिष्ट स्थान में अधिक समय तक बद्ध करना आवश्यक है, जिससे उनका निरीक्षण करने का अवसर प्राप्त हो। अनावेशित परमाणुओं को उनके अंतरस्थ परमाण्वीय चुंबकीय द्विध्रुव आघूर्ण (intrinsic atomic magnetic dipole moment) तथा स्थानीय चरम क्षेत्र से प्रेरित दोलायमान विद्युत द्विध्रुव आघूर्ण का उपयोग करके स्थान-बद्ध करने का प्रयत्न किया गया है। इस प्रकार के ट्रैप में प्रेरित प्रकाश बल का उपयोग किया

चित्र-5 : एक-विमीय मैग्नेटो-ऑप्टिक ट्रैप की कार्यकारी संरचना

असमांग चुंबकीय क्षेत्र के कारण ऊर्जा तल ज़ीमान-विभेदित हो जाते हैं । विरुद्ध दिशा में संचरित तथा विरुद्ध ध्रुवणयुक्त (+X दिशा में σ^+ तथा -Z दिशा में σ^-) लेसर किरणों (ω_L : आवृति) के कारण परमाणु मूल बिंदु की ओर बल का अनुभव करते हैं, जो स्थान पर निर्भर करता है ।

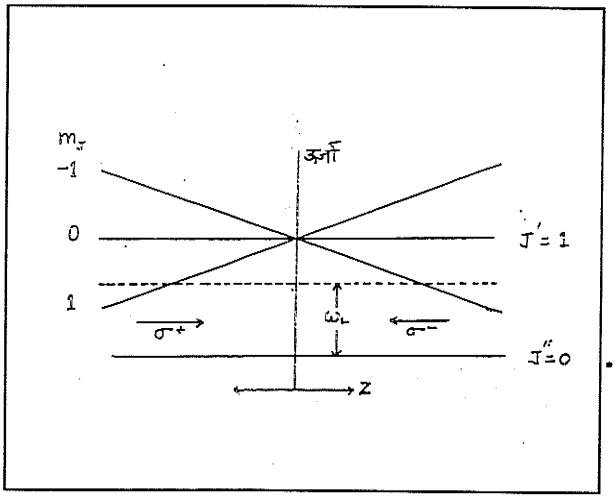

चित्र-6 : त्रि-विमीय मैग्नेटो-ऑप्टिक ट्रैप

विरुद्ध दिशा में विद्युत धारा का वहन करने वाली दो कुंडलियों द्वारा गोलीय चतुर्ध्रुवी चुंबकीय क्षेत्र प्राप्त किया जाता है । दर्शाये गये ध्रुवण से युक्त छः लेसर किरणों का प्रयोग किया जाता है ।

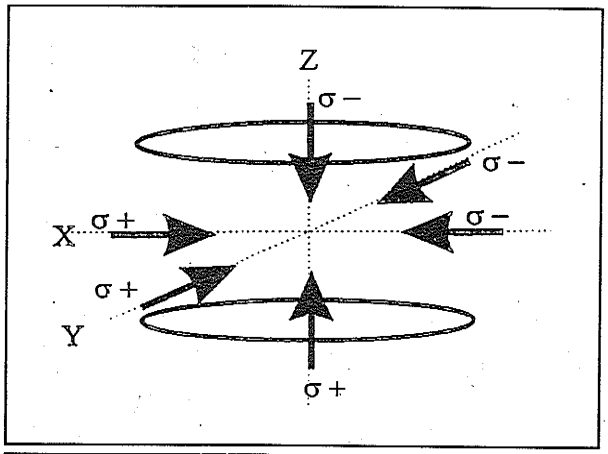

जाता है तथा ऐसे पाश बहुत ही उथले (shallow) होते हैं.। परंतु केवल प्रकाशीय बल के उपयोग से परावियुत (dielectric) कण को एक ही स्थान पर बद्ध करना स्थिरविद्युत के अर्नशॉ सिद्धांत के अनुसार असंभव है । इसलिए लेसर किरणों के साथ स्थानानुसार बदलने वाले चुंबकीय क्षेत्र का उपयोग किया जाता है । इस प्रकार के ट्रैप को मैग्नेटो-ऑप्टिक ट्रैप अथवा ज़ीमन विस्थापन प्रकाशीय पाश कहा जाता है ।

चित्र-5 में MOT की मूलभूत संरचना को स्पष्ट किया गया है । यहां परमाणु का $J_{J'=0} \rightarrow J_{J''=1}$ संक्रमण दिखाया गया है । असमरुप चुंबकीय क्षेत्र-जो स्थानानुसार $B(z)=\alpha.z$ की तरह बदलता है, (α= स्थिरांक) की उपस्थिति में इन ऊर्जा स्तरों से संबंधित (2J+1) ऊर्जा अवस्थाएं उनसे $\Delta E=\mu m_J B(z)$ मान से विभक्त हो जाती हैं । दो क्षीण व विरुद्ध ध्रुवण युक्त तथा +Z व -Z दिशाओं में संचरित लेसर किरणों से परमाणुओं को विकिरणित किया जाता है । ऑप्टिकल मोलेसिस के समान ये लेसर किरण चुंबकीय क्षेत्र के अभाव में परमाणु की जो अवशोषण- रेखा है, उसके सापेक्ष अवरक्त विस्थापित होते हैं । इस व्यवस्था के फलस्वरुप +Z अक्ष पर स्थित परमाणु σ^- ध्रुवण युक्त लेसर फोटॉन का वरणात्मक अवशोषण (preferential absorption) करते हैं, तथा -Z दिशा में प्रकाशीय बल का अनुभव करते हैं, जब कि ऋण अक्ष पर स्थित परमाणु σ^+ ध्रुवण युक्त लेसर फोटॉन का अवशोषण कर +Z दिशा में प्रकाशीय बल का अनुभव करते हैं । इस प्रकार परमाणु निरंतर मूल बिंदु की दिशा में बल अनुभव करते हैं । इस कल्पना का विस्तार कर त्रि-मितीय रचना (चित्र-6) में छः लेसर किरणों की, जो धन व ऋण X, Y तथा Z दिशाओं में संचरित हैं, तथा $B(r) = \alpha (r)$ के तरह के चुंबकीय क्षेत्र की आवश्यकता होती है । इस प्रकार के क्षेत्र को गोलीय चतुर्ध्रुवी चुंबकीय क्षेत्र (spherical quadrupole magnetic field) कहते हैं । विरुद्ध दिशा में विद्युत-प्रवाह का वहन करने वाली दो समअक्ष कुंडलियों द्वारा यह प्राप्त किया जा सकता है ।

चित्र-7 : बोस-आइंस्टाइन कंडेन्सेशन प्राप्त करने की प्रणाली

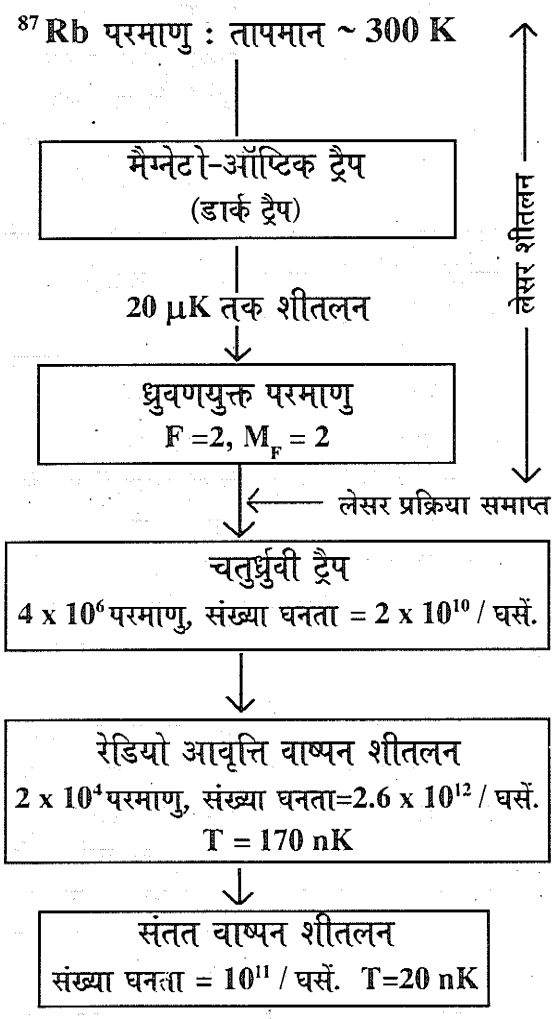

MOT में बद्ध परमाणुओं की संख्या तथा घनता लेसर किरणों का आमाप (size), उनका विस्वरण (detuning) तथा चुंबकीय बल की प्रवणता (gradient) प्राचलों पर निर्भर होती है। MOT में 0.5 मिमी. त्रिज्या के क्षेत्र में 10^{9-11} के लगभग माइक्रोकेल्विन (μK) के तापमान तक शीतलित परमाणु प्राप्त किये जा सकते हैं। ये उपलब्धियां लेसर शीतलन तकनीक में मॉट को अनिवार्य बनाती हैं। बोस-आइंस्टाइन संघनन प्राप्त करने के लिए MOT का उपयोग चुंबकीय ट्रैप को भरने के लिए (to load) किया जाता है। तत्पश्चात् 'वाष्प-शीतलन' तकनीक से परमाणुओं का तापमान और घटाया जाता है (चित्र-7)।

परमाणुओं के लेसर किरणों के साथ संवेग तथा ऊर्जा-विनिमय द्वारा उनकी गतिज ऊर्जा घटाने की तकनीक से वर्णक्रमदर्शिकी के क्षेत्र में आमूल परिवर्तन आ गया है। तथा इस तकनीक का अनेक मूलभूत नियमों व प्रक्रमों, उदाहरण के लिए BEC इत्यादि को समझने में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। अनावेशित परमाणुओं का परिचालन तथा उन्हें बद्ध करने के अनेक तरीके शीघ्रता से विकसित हो रहे हैं। इन तकनीकों के कारण उच्च-विभेदन स्पेक्ट्रमदर्शिकी में अनेक परिवर्तन आये हैं। लघु-परिसर अन्योन्यक्रिया से उत्पन्न संघट्टात्मक आचरण, परमाणुओं के सामूहिक आचरण से उत्पन्न दीर्घ-परिसर अन्योन्य क्रिया आदि विषय आज वैज्ञानिकों को अपनी ओर आकर्षित कर रहे हैं। परमाणु-प्रकाशिकी (Atom-Optics) में भी लेसर-शीतलन बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है।

जैसे कि पहले उल्लेख किया गया है, भा. प. अ. केंद्र में लेसर शीतलन कार्यक्रम प्रारंभ हुआ है। इसका उद्देश्य स्थानीय तकनीकी तथा निपुणता द्वारा इस कार्यक्रम का विकास करना है। इस संबंध में भा. प. अ. केंद्र अपने बहुमुखी आयाम तथा मल्टीडिसीप्लिनरी प्रकृति के कारण ऐसे कार्यक्रम को समृद्ध करने के लिए आदर्श स्थान है। उल्लेखनीय है कि इसमें प्रयुक्त किया जाने वाला मॉट ट्रैप, लेसर एवं प्लाज्मा तकनीकी प्रभाग, स्पेक्ट्रॉस्कॉपी प्रभाग तथा तकनीकी भौतिकी एवं प्रारूप तकनीकी प्रभाग ने संयुक्त रूप से तैयार किया है। मूलतः इस कार्यक्रम के तीन प्रमुख अंग हैं। अत्योच्च विभेदन तकनीकी, मूलभूत क्वान्टम सिस्टम का सामूहिक आचरण (BEC) तथा परमाणु-प्रकाशिकी। मॉट का विकास इन तीनों अंगों के लिए आवश्यक है। इस क्षेत्र में हमारा काम प्रगति-पथ पर है तथा कुछ ही समय में हम कुछ परिणाम प्राप्त करने की आशा रखते हैं।

❐❐❐

विज्ञान कहानी

जीवाश्मों में निहित मेरी पहचान : डायनोसौर की आत्मकथा

कुमारी स्मिता चटर्जी
(यूजीसी रिसर्च स्कॉलर),
द्वारा श्री प्रकाश चटर्जी
68/138, नेहरू मार्ग, अशुतोष नगर, ऋषिकेश - 249201

काल की गति को कोई नहीं रोक सकता । यदि ऐसा करना संभव होता, तो आज मेरा भी एक अस्तित्व रहता और मेरी भी एक जीती-जागती पहचान होती । पर, ऐसा कुछ नहीं किया जा सका । फलस्वरूप, काल के प्रवाह में मेरा अस्तित्व ही मिट गया ।

परंतु आज, विज्ञान की खोज और भू-गर्भ वैज्ञानिकों की लगन ने मुझे कब्र से खोद निकाला – जीवाश्मों के रूप में । मेरे समीप बैठ कर लोगों ने मेरा अध्ययन करना प्रारंभ किया । उन्होंने मुझे भीमकाय प्राणी का दर्जा दे डाला । पर, मेरे अपने दृष्टिकोण में तो मैं एक साधारण सरीसृप वर्ग का प्राणी मात्र था । फिर मुझसे लोगों को डर किस बात का ? जीवाश्म रूपी मेरे अवशेषों को देखकर भी आतंकित होना, क्या इस बात का द्योतक नहीं कि आज भी जनसाधारण मेरे अस्तित्व से डरे हुए हैं ।

चलचित्रों के माध्यम से मुझे पुनः कंप्यूटर द्वारा जगाया गया, पर कितना व्यथित हुआ मेरा हृदय, जब मैंने मानव जैसे सर्वोच्च वर्ग के प्राणी को मुझसे डरते हुए पाया । बच्चे तो डरे ही, वयस्क भी उनसे अलग नहीं हो पाये । मुझे केंद्र-बिंदु बनाकर चलचित्र जगत ने जुरासिक पार्क, जुरासिक सिटी एवं द लॉस्ट वर्ल्ड नामक चलचित्रों का निर्माण किया । मनोरंजन एवं भय-सृष्टि की दृष्टि से तो ये चलचित्र सार्थक सिद्ध हुए, पर वास्तविकता से ये कोसों दूर थे । कारण, मनुष्यों के बीच भला मैं कब रहा और कब मैंने उनको अपना भोजन बनाकर उनका समूल विनाश किया ? यदि ऐसा मैंने किया होता, तो आज मानव समुदाय न होता, मेरा ही सर्वत्र राज्य होता ।

मुझे सही अर्थ में जानने के लिए आप सभी को कई करोड़ों वर्ष पीछे मुड़ना होगा, वस्तुतः पृथ्वी के निर्माण की अवधि पर्यंत ।

पृथ्वी का निर्माण, आज से करीब पाँच सौ करोड़ वर्ष पूर्व एक धधकते हुए अग्निपिंड के रूप में हुआ था । समय के साथ धीरे-धीरे इसके तापमान में गिरावट आयी । तदुपरांत विभिन्न रासायनिक क्रियाओं का चक्र चला, नये यौगिकों का गठन हुआ, पानी की उत्पत्ति हुई, पृथ्वी का तापमान और निम्न हुआ, समुद्रों की उत्पत्ति हुई, विभिन्न खनिजों एवं कार्बनिक यौगिकों का जल में समावेश हुआ और अंततः जीवन की उत्पत्ति हुई ।

मेरा अवतरण मीसोजोइक महाकल्प अर्थात मध्यजीवी महाकल्प में करीब 23-24 करोड़ वर्ष पूर्व हुआ था । हृष्ट-पुष्ट देहधारी के रूप में मैं "डायनोसौर" नाम से जाने लगा । मेरा विकास उत्तरोत्तर त्वरित गति से होता गया । क्योंकि प्रकृति का पूर्ण सहयोग मुझे मेरे विकास के लिए प्राप्त था । आधिपत्य के दृष्टिकोण से जल, थल एवं वायु में मैं सर्वव्यापी हो गया ।

मध्यजीवी महाकल्प की अवधि लगभग सत्रह करोड़ वर्ष थी । इस महाकल्प को तीन कल्पों में बांटा गया है ।

1) ट्राइएसिक कल्प
2) जुरासिक कल्प,
3) क्रिटेशियस कल्प,

प्रथम कल्प में महाद्वीपों का जल सतह से ऊपर आने की घटना घटी । वातावरण में शुष्कता व्याप्त थी तथा चारों ओर रेगिस्तानों का प्रसार था । इस कल्प की

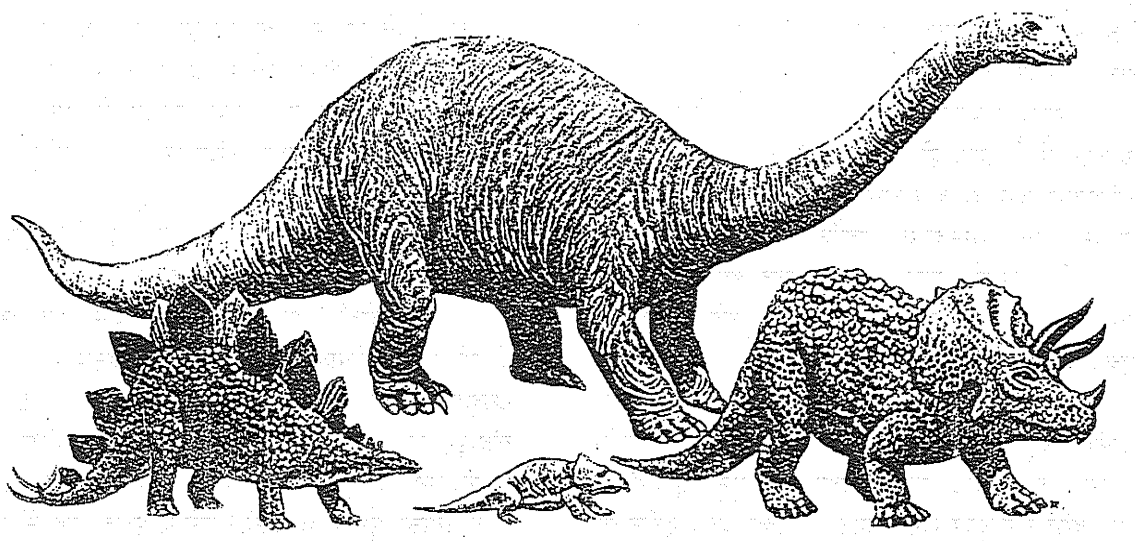

अवधि प्राय: चार करोड़ वर्ष की थी । इसी कल्प में मेरा अवतरण हुआ । मैं अपने अन्य भाइयों के साथ प्रकट हुआ । मेरा नाम "डायनोसौर" मेरी छिपकली के समान खतरनाक आकृति के कारण पड़ा । मेरा नामकरण करने वाले थे एक ब्रिटिश वैज्ञानिक - रिचर्ड ओवेन ।

जुरासिक कल्प के दौरान मेरा और मेरे साथियों का, इस धरती पर एक छत्र अधिकार स्थापित हुआ, जो अंतिम कल्प क्रिटेशियस तक बना रहा । अंतिम कल्प तक राज करने के पश्चात एकाएक मेरे परिवार का अस्तित्व मिट गया । मेरा विस्तार जिस समय हुआ उस समय पृथ्वी का तापमान बढ़ा हुआ था, क्योंकि उस समय ज्वालामुखी सक्रिय थे, जिसके फलस्वरूप वायु में कार्बन-डाइ-आक्साइड की मात्रा बहुत अधिक थी, परंतु, धरती के तापमान में गिरावट आने के साथ ही मेरा अस्तित्व मिटने लगा । हिमयुग के दौरान वातावरण इतना ठंडा पड़ गया कि उसमें मेरे और मेरे साथियों का जी पाना असंभव हो गया । फलस्वरूप धीरे-धीरे मेरा परिवार लुप्त होता गया ।

मैं तो मिट गया, पर मेरा अस्तित्व मिट न सका । मौसमी प्रक्रियाओं के बदलाव के अंतर्गत मेरा विलुप्त शरीर जीवाश्मों में परिवर्तित होता गया । बरसों बीत गये और मैं अनारकली की तरह कब्र में दबा रहा । पर आज मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि, लोग मुझे भूले नहीं । पिछले पंद्रह-बीस बरसों से मेरे बारे में अनुसंधान जारी हैं । फलत: मेरे साथ मेरे आत्मीयों के जीवाश्म भी सामने आते गये । अब तक मेरी तीन सौ से अधिक प्रजातियों की खोज की जा चुकी है । मेरे परिवार के जीवाश्मों की खोज तो दुनिया भर में की गयी परंतु सर्वाधिक सफलता हाथ लगी अमरीका में ।

मेरे पूर्वज ट्राइएसिक कल्प के थे जो थिकोडौन्ट नाम से जाने जाते थे । ये अपनी पिछली टांगों से दौड़ सकते थे । ये सरीसृप वर्ग के मेरे पूर्वज कई प्रकार के थे । कुछ तो मगरमच्छ से मेल खाते थे और कुछ एक के पैर उनके शरीर के ठीक नीचे होने के कारण, दौड़ने में उनकी सहायता करते थे । विकास के अंतर्गत, कुछ एक में पिछली टांगों का विस्तार हुआ जो केवल दौड़ने के काम आते थे । इसी वर्ग से मेरा उत्थान हुआ और मैं भी तेज धावक के रुप में जाने जाना लगा ।

जुरासिक कल्प के मेरे पूर्वज स्टीगोसौरस कहलाये जिनकी पहचान उनके शरीर के ऊपर स्थित प्लेट्स थीं । मेरे ये पूर्वज शाहाकारी स्वभाव के थे । आयतन की दृष्टि से इनका मुखमंडल छोटा था जिसके फलस्वरूप उन्हें पेड़-पौधे खाने में पर्याप्त समय लगता था । कुछ

वैज्ञानिकों का मानना है कि मेरे ये पूर्वज मृत प्राणियों का भी सेवन करते थे ।

सबसे विशालकाय मेरे पूर्वज थे "सौरोपौड" । आकृति से विशाल होते हुए भी वे नर्म स्वभाव के थे । मांसाहारी वर्ग के डायनासौर से बचाव का एक मात्र साधन उनकी भीमकाय आकृति थी ।

क्रिटेशियस कल्प के मेरे पूर्वज सींगों वाले थे, सिर का सख्त आवरण एवं सींग ही उनके बचाव का एकमात्र साधन था । इसी कल्प के मेरे पूर्वज थे शस्त्रधारी एनकाइलोसौरस । इनको काबू में लाना या मार डालना असंभव था । ये स्टीगोसौरस के अनुगामी थे । स्कोलोसौरस एक विशिष्ट सुरक्षित प्रकार का एन्काइलोसौरस था जिसका समूचा शरीर काटों से ढका था । शरीर का सबसे बड़ा कांटा उसकी गदाकृति पूंछ के अंतिम सिरे पर था ।

हमारे समुदाय का साधारण भोजन मांस ही था । प्रथम मांसाहारी डायनोसौर या थीरोपौडस अपने पूर्वज थीकोडौन्ट्स के समान ही थे । कोलियोफाइसिस, ट्राइऐसिक कल्प का मांसाहारी था जिसकी लंबाई लगभग तीन मीटर थी । बड़े और भारी भरकम थीरोपौडस, कारनोसौरस कहलाये ।

सरीसृप वर्गीय प्राणी होने के कारण, हमारा शरीर शीत रुधिर होना चाहिए था, पर कुछ तथ्यों से यह सिद्ध हो चुका है कि हम ऊष्म रुधिर प्राणी थे । इस तथ्य को सिद्ध करने का प्रमुख कारण यह है कि, हम अपने शरीर में स्वतः ही उतनी ऊर्जा उत्पन्न कर लेते थे, जितनी कि हमें आवश्यकता होती थी । इसके अलावा हम रात के समय भी सक्रिय हुआ करते थे, जो कि केवल ऊष्म रुधिर प्राणी ही हो सकते हैं । इतना सब कुछ होते हुए भी डंके की चोट पर यह कहना कि हम वास्तव में किस प्रकार के प्राणी थे आज भी असंभव प्रतीत होता है क्योंकि, मेरे व मेरे पूर्वजों की जानकारी के समस्त पहलू, अंधकार की चादरों से ढके हुए हैं ।

मेरे कुछ पूर्वज जलचर भी थे । इनमें प्रमुख थे मीसोसौरस, नोथोसौर एवं प्लैकोडौन्ट।

इग्यूवानोडौन प्राथमिक क्रिटेशियस डाइनासौर थे जो औरनिथोपौड समुदाय के थे । इनके पंजों की आकृति पक्षियों जैसी थी । ये शाकाहारी थे एवं इनकी लंबाई आठ मीटर के लगभग थी । इनकी विशेषता थी इनके अंगूठे जो नुकीले कांटानुमा हुआ करते थे, इसी से वे अपनी सुरक्षा करते थे । मेरे ये पूर्वज झुंड में रहते थे, जिसका प्रमाण इनके एक ही स्थान पर तीस से भी अधिक पाये गये जीवाश्म देते हैं ।

इतना विस्तृत था मेरे समुदाय का प्रसार कि इसके विलुप्त होने की सामान्यता कल्पना भी नहीं की जा सकती है । परंतु यही आज वास्तविकता बन चुकी है । आज मेरी एवं मेरे पूर्वजों की पहचान का एकमात्र साधन है हमारा "जीवाश्म" । इन्हीं अवशेषों को देखकर लोग हमारी वास्तविक गतिविधिर का अनुमान मात्र कर रहे हैं । मुझे तो बड़ा आनंद मिलता है, जब मैं यह देखता हूं कि मानव समुदाय किस लगन से मेरा अध्ययन करते हुए तथ्यों को उजागर करने का प्रयत्न कर रहा है । उसके अध्ययन से यह सिद्ध हुआ है कि आज अगर मैं कहीं होता, तो समस्त प्राणी समुदाय पर भारी सिद्ध होता ! और सच कहूं ? मैं खुद भी आतंकवादी के रूप में ही परिचित रहना चाहता हूं ।

❐❐❐

टिप्पणियां

1. अपशिष्ट जल के परिष्करण द्वारा पर्यावरण संरक्षण :

विभिन्न उद्योगों द्वारा पर्यावरण प्रदूषण एक ज्वलंत समस्या का रूप ले चुका है । उदाहरण के तौर पर विभिन्न रासायनिक इकाइयों से नदियों, नालों, सागरों आदि में प्रवाहित होने वाले अपशिष्ट जल की धारा में कई प्रकार के अम्ल, कार्बनिक तथा अकार्बनिक यौगिक विद्यमान रहते हैं । इन पदार्थों की उपस्थिति के प्राय: निम्न कारण हैं :-

(1) इस अपशिष्ट जल को रासायनिक इकाइयां पुन: प्रयोग में नहीं ला सकतीं ।

(2) नदियों का जल प्रदूषित हो जाता है ।

नदी के जल की जैविक ऑक्सीजन (बायो-लॉजिकल या बायोकेमिकल ऑक्सीजन) कम हो जाती है तथा अम्लीयता या क्षारीयता बढ़ जाती है । इससे जल, जीव-जंतुओं एवं वनस्पतियों के लिए विषैला हो जाता है । इस प्रकार का जल न सिर्फ पीने के लिए बल्कि सिंचाई के लिए भी हानिकारक होता है । लेकिन हमारे देश की विडंबना यह है कि अनेक लोग फिर भी किन्हीं कारणों से इसी जल का सेवन अपने नित्य प्रति जीवन में करते हैं ।

यदि इन रासायनिक अशुद्धियों को किसी भी विधि द्वारा पृथक कर लिया जाय तो,

(1) इन रसायनों की उपस्थिति न्यूनतम होने से औद्योगिक इकाइयां इस जल का पुन: प्रयोग कर सकती हैं ।

(2) यह अपशिष्ट जल नदी-नालों में बहता भी है तो जलीय जीवों के लिए कम हानिकारक रह जाता है ।

(3) मूल्यवान रसायनों की प्राप्ति हो सकती है ।

जल की शुद्धता का अंतर्राष्ट्रीय मानक स्तर अधिक जटिल है । बाजार अर्थव्यवस्था, अंतर्राष्ट्रीयकरण एवं पर्यावरण के विषय में जागरूकता बढ़ने के कारण हमारे देश में जल की शुद्धता का स्तर भी अंतर्राष्ट्रीय स्तर का ही रखना पड़ेगा । अत: भविष्य में अपशिष्ट जल का परिष्करण अनिवार्य हो जायेगा ।

सेल्युलोज, काष्ठ लुग्दी एवं कागज, डाई - मेथिल टेरीथेलेट (डी. एम. टी.) पॉलिस्टर आदि उत्पादन इकाइयों से निकलने वाले अपशिष्ट जल में, फीनॉल, विभिन्न कार्बोजिलिक अम्ल तथा अन्य प्रदूषक तत्त्वों के साथ एसीटिक अम्ल 0.3 से 5% तक उपस्थित रहता है । इसी तरह नदी के जल में कार्बोजिलिक अम्लों की सांद्रता 100 पी पी एम से अधिक सहन नहीं की जा सकती ।

एसीटिक अम्ल एक महत्वपूर्ण रसायन है जिसकी हमारे देश में वार्षिक मांग लगभग 90,000 मीट्रिक टन तथा मूल्य रु. 30,000/= प्रति टन है । देश को इसका बहुतायत में आयात करना पड़ता है । अपशिष्ट जल से एसीटिक अम्ल प्राप्त करने की विधियां इस प्रकार हैं ।

अपशिष्ट जल से एसीटिक व अन्य कार्बोजिलिक अम्ल प्राप्त करने की कई पृथक्करण विधियां विकसित की जा चुकी हैं जो प्राय: जटिल एवं महंगी हैं । इनमें प्रमुख हैं विलायक निष्कर्षण, एजोट्रोपिक आसवन, निष्कर्षी आसवन, अवशोषण (सक्रिय कार्बन या अन्य अवशोषक द्वारा) आंशिक आसवन आदि ।

जल तथा एसीटिक या फॉर्मिक अम्ल का क्वथनांक निकट होने के कारण, आंशिक आसवन विधि में रिफ्लैक्स अनुपात तथा सैद्धांतिक स्तरों की संख्या बहुत अधिक रखने पर भी एसीटिक अम्ल की प्राप्ति कम रहती है । यदि जल में एसीटिक अम्ल की 50 % सांद्रता से अधिक हो तो इस विधि का उपयोग किया जा सकता है । एजोट्रोपिक आसवन विधि में एक तीसरे अवयव, "प्रवेशक" (entrant) को अपशिष्ट जल में मिलाकर आसवन किया जाता है । यह प्रवेशक मुख्यत: कम अणुभार वाले एस्टर होते हैं जो, (1) जल में लगभग अघुलनशील होते हैं, (2) एसीटिक अम्ल के सापेक्ष जल का प्रभावी क्वथनांक कम कर देते हैं, एवं (3) अनवरत उबलने वाला द्रव मिश्रण (सी बी एम) बनाते हैं ।

इसी प्रकार निष्कर्षी आसवन विधि में ऐसे उच्च ध्रुवीय यौगिकों (विलायकों) को प्रयोग करते हैं जिससे

ऐसीटिक या कार्बोजिलिक अम्ल निष्कर्षक के साथ आसवक के तल में एकत्रित हो जाते हैं और जल, आसुत के रूप में पृथक हो जाता है। अवशोषण विधि में अपशिष्ट जल से कार्बोजिलिक अम्लों के अतिरिक्त अन्य अशुद्धियां भी पृथक हो जाती हैं। अम्ल को अवशोषक से पुनर्जनन प्रक्रम में प्राप्त किया जाता है। उत्पाद की प्राप्ति के लिए वि-शोषण तथा पुनर्जनन ये दो क्रम ऐसे हैं जिनका कि व्यवहारिक या प्रौद्योगिकी के स्तर पर विकास करना कठिन होता है।

सभी विधियों का आर्थिक विश्लेषण करने पर विलायक निष्कर्षण तथा एजोट्रोपिक आसवन प्रक्रम का एक साथ प्रयुक्त करना सबसे उत्तम पाया गया है। विलायक निष्कर्षण में मुख्यतः दो प्रकार के निष्कर्षण प्रयुक्त होते हैं : 1) निम्न क्वथनांक वाले विलायक/ निष्कर्षण, एवं 2) उच्च क्वथनांक वाले निष्कर्षण।

निम्न क्वथनांक वाले विलायकों में विभिन्न एस्टर, एल्कोहल, कीटोन, ईथर (वितरणांक : 0.3-0.9%) आदि प्रमुख हैं। उच्च क्वथनांक वाले कुछ विलायक हैं : आर्गेनो फॉस्फोरस ऑक्सी यौगिक, जैसे ट्राई-एन -ऑक्टाइल फास्फीन ऑक्साइड (टोपो), ट्राईब्युटाइल फास्फेट (टी बी पी) आदि, टरनरी या क्वाटरनरी अमीन जैसे, 1,3 ट्राई ऑक्टाइल अमीन (टी ओ ए), ट्राई ब्युटाइल अमीन (टी बी ए) आदि। विलायक एसीटिक अम्ल या कार्बोसिलिक अम्लों के लिए वितरणांक (डिस्ट्रीब्यूशन कोफिसिएन्ट) पर्याप्त होना चाहिए। एस्टर, एल्कोहल, कीटोन आदि की तुलना में टोपो, टी बी पी, टी ओ ए (2.3-4.5) आदि का वितरणांक तीन, चार गुना अधिक होता है। इन विलायकों की जल घुलनशीलता नगण्य होती है। अतः कार्बोजिलिक अम्लों (जिनकी मात्रा 0.3-35% तक हो सकती है, के निष्कर्षण में अत्यंत उपयुक्त हैं। लेकिन इन विलायकों के मूल्य साधारण निम्न क्वथनांक वाले विलायकों से कई गुना अधिक होते हैं।

एक भारतीय रासायनिक इकाई 200 गैलन प्रति मिनट (4.5 टन / प्रति घंटा) की दर से निकलने वाली अपशिष्ट जल की धारा को परिष्कृत करना चाहती है। जिसमें एसीटिक अम्ल की सांद्रता लगभग 3% है। विलायक निष्कर्षण का प्रयोग करें तो आकलन से देखा गया है कि लगभग 21,000/- रु. प्रति घंटा अथवा लगभग 5 लाख रु. प्रतिदिन का शुद्ध लाभार्जन किया जा सकता है और इस प्रकार यह इकाई परिष्करण इकाई में हुए पूंजी निवेश को लगभग तीन वर्षों में प्राप्त कर लेगी। अपशिष्ट जल से यदि मूल्यवान रसायनों को पृथक कर जल का शुद्धिकरण हो सके तो हमें दोहरा लाभ होगा। मुख्यतः जलप्रदूषण को कम करने में प्रभावी कदम होगा। अतः आवश्यकता इस बात की है कि उचित विधि का प्रयोग करते हुए एसीटिक अम्ल, फीनोल, फीनोलिक अम्ल आदि की पुनःप्राप्ति भी हो सके। अपशिष्ट जल के परिष्करण में लगने वाला पूंजी निवेश उपर्युक्त रसायनों की पुनःप्राप्ति से वापस मिल सकेगा तथा पर्यावरण संरक्षण की ओर यह एक कदम होगा।

भगत राम नौटियाल
भारतीय पेट्रोलियम संस्थान, देहरादून-248 005

2. कितने उपयोगी हैं - मैग्नीशियम एवं मैंगनीज

मैग्नीशियम एवं मैंगनीज ह ने लिए बहुपयोगी धातुएँ हैं। मैग्नीशियम हमारे शरीर के लिए एक आवश्यक तत्त्व होता है। वस्तुतः मैग्नीशियम वह तत्त्व है जो कैल्शियम के साथ मिलकर हमारी अस्थियों तथा दांतों को कठोरता प्रदान करता है। इन दोनों में से यदि एक तत्त्व भी कम हो तो हमारे दांत एवं अस्थियाँ कमजोर हो जाती हैं। यह निर्विवाद सत्य है कि कैल्शियम से हमारी अस्थियाँ बनती अवश्य है परंतु मैग्नीशियम ही के कारण अस्थियाँ जुड़ती हैं एवं उनमें कठोरता आती है। इसके कारण वे अपनी जगह पर बनी रहती हैं।

प्रायः यह देखा गया है कि जिन लोगों की अस्थियाँ शीघ्र टूट जाती हैं, उनमें कैल्शियम तथा मैग्नीशियम की कमी मानी जाती है। ऐसे कई उदाहरण हैं कि कुछ लोग थोड़ी सी ऊंचाई से गिर पड़े और उन्हें फ्रेक्चर हो जाता है क्योंकि उनमें कैल्शियम एवं मैग्नीशियम

की कमी होती है । अतः यह सत्य प्रकट हो चुका है कि मैग्नीशियम की थोड़ी सी मात्रा भी शरीर के लिए अत्यंत आवश्यक होती है । हमें बच्चों को ऐसा आहार अवश्य देना चाहिए जिसमें कैल्शियम एवं मैग्नीशियम की अधिकता हो । मैग्नीशियम बच्चों के मस्तिष्क की कोशाओं एवं मांसपेशियों का निर्माण करने में भी सहायक होता है । अतः बच्चों को कैल्शियम प्रधान खाद्य जैसे दूध, दही, पालक के साथ-साथ मैग्नीशियम प्रधान खाद्य तथा टमाटर एवं हरी तरकारियाँ देना चाहिए । दांतों में मैग्नीशियम अन्य अस्थियों की अपेक्षा आधा प्रतिशत अधिक होता है। यह अतिरिक्त मैग्नीशियम हमारे दांतों को इतना कठोर बना देता है कि कड़ा से कड़ा भोजन भी हम चबा लेते हैं । मैग्नीशियम हमारे शरीर की जीवन शक्ति को बढ़ाता है क्योंकि यह रक्त में उपस्थित एल्ब्यूमीन के निर्माण में सहायक होता है । शुद्ध रक्त हमारे द्वारा ग्रहण किये गये आहार के अनपचे भाग को बाहर निकालने में भी सहायक होता है । यह फेफड़े तथा नाड़ियों के कोषों के निर्माण में भी सहायता करता है । मैग्नीशियम प्राप्ति के स्रोत हैं - टमाटर, केला, खजूर, दूध, तरकारियाँ एवं नीबू तथा गूदेवाले फल आदि ।

मानव प्राचीनकाल से ही मैंगनीज का भी उपयोग करता आ रहा है । रोम निवासी मैंगनीज के खनिज पाइरोलुसाइट (मैंगनीज ऑक्साइड) को काले पाउडर के रूप में जानते थे । वे इसे "कांच धोने वाला साबुन" या मैंगनीज कहते थे । यूनानी भाषा में इसका अर्थ होता है शुध्द करना । इस पाउडर को शीशे चमकाने के काम में भी लिया जाता था । कांच के कारीगर कांच को सुंदर बैंगनी रंग के डिजाइन के लिए इसका प्रयोग करते थे । इस पाउडर रूपी मैंगनीज को मैग्नीशिया शहर के आसपास निकाला जाता रहा है । अतः इसे काला मैग्नीशिया भी कहा जाता है ।

मैंगनीज की खोज का श्रेय स्वीडिश रसायनज्ञ गाहन (वर्ष 1774) को है । इसके पूर्व इगनाटिस कैम (1770) टोरमेन बर्गमेन, कार्लशील आदि भी इसकी खोज में जुटे रहे परंतु अंत में सफलता का ताज 'गाहन' ने ही पहना । इसको वर्ष 1825 में लौह के एक एलॉय फेरो मैंगनीज के रूप में प्राप्त किया गया । वर्ष 1876 से फेरो मैंगनीज का औद्योगिक प्रगलन आरंभ हो गया तथा वर्ष 1882 में इस तत्त्व की उच्च मात्रा (13%) वाला स्टील प्राप्त कर लिया गया । मैंगनीज और लौह में गहरी दोस्ती है । अतः मैंगनीज स्टील को शीघ्र ही मशीन निर्माताओं की मान्यता प्राप्त हो गयी । उच्च जीर्ण प्रतिरोधता के कारण इसका उपयोग इन कल-पुर्जों के निर्माण में भी किया जाने लगा जो उच्च दाब पर बहुत घिस जाते थे जैसे रेल की पटरियों के क्रासबांड, क्रशर के जबड़े, गोला मिल के गोले आदि । स्टील से बने ताले और तिजोरियाँ भी काफी प्रचलित हुईं । स्टील के ऑक्सीकरण तथा विगंधकन के लिए भी इसका प्रयोग होता है । यह तत्त्व स्टील तथा ढलवां लोहे की हर किस्म में कम या अधिक मात्रा में अवश्य मिलता है । लोहे से इसकी मित्रता के कारण आवर्त सारणी में भी इनका स्थान आस-पास ही है । मैंगनीज में दाब के अनुसार प्रतिरोध बदलने के गुण के सिद्धांत पर विद्युत मैनोमीटर का निर्माण किया जाता है । इसका एक महत्वपूर्ण गुण यह भी है कि हम मैंगनीज के एलॉय, मैंगनीज से बना घंटा, कितनी ही जोर से क्यों न बजायें, उसमें से आवाज बहुत कम ही निकलेगी । इसी गुण के कारण इनका उपयोग रेल या ट्राम की पटरियों तथा इसी तरह आवाज करने वाले अन्य पुर्जों के निर्माण में किया जाता है क्योंकि इसके कारण शोर प्रदूषण कम हो जाता है ।

"साल्युत - 5" की अंतरिक्ष उड़ान के दौरान मैंगनीज -निकल एलॉय की सहायता से वेल्डिंग का सफल प्रयोग किया गया । इसी प्रकार अति शुद्ध नाइट्रोजन के उत्पादन में भी उत्प्रेरक के रूप में मैंगनीज का उपयोग किया जाता है ।

मैंगनीज हमारे शरीर के लिए भी आवश्यक है । मनुष्य को प्रतिदिन 3 - 8 मिलीग्राम मैंगनीज की आवश्यकता होती है । मानव के रक्त में 0.002-0.003 प्रतिशत मैंगनीज पाया जाता है । मेहंदी रंग की चीटियों में 0.05 प्रतिशत तक मैंगनीज पाया गया है । इसी

प्रकार कुछ जीवाणुओं, फफूंद, समुद्री घास तथा वनस्पतियों में भी मैंगनीज की उल्लेखनीय मात्रा पायी गयी है ।

समुद्र तल में मैंगनीज के विशाल भंडार बिखरे हुए पाये गये हैं । इनका रंग भूरे और काले रंग का होता है । समुद्र के अलावा भू-पर्पटी में मैंगनीज 0.09 प्रतिशत मात्रा में पाया जाता है । यह माना जाता है कि लगभग दो अरब वर्ष पूर्व पृथ्वी की सतह पर मैंगनीज से भरपूर उल्कामय धूल गिरी जिसके फलस्वरूप पृथ्वी एवं महासागरों के तल पर मैंगनीज के निक्षेप जमा हो गये । हमारे देश में राजस्थान, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, मैसूर तथा उड़ीसा में भी मैंगनीज की खुदाई होती है । स्टील उद्योग के लिए मैंगनीज बहुत ही उपयोगी एवं आवश्यक धातु सिद्ध हुआ है । प्रति टन इस्पात के लिए 12 पौंड मैंगनीज मिलाया जाता है । इस उद्योग के अलावा सूखी बैटरियों में, पेन्ट व वार्निश बनाने में भी इसका उपयोग बहुतायत से होता है । प्रतिरक्षा की विभिन्न प्रकार की तैयारियों में इसका महत्वपूर्ण योगदान है ।

डॉ. डी. डी. ओझा

'गुरु-कृपा,' ब्रम्हपुरी, हजारी चबूतरा,
जोधपुर - 342 001

3. उत्तराखंड की पादप विविधता: एक परिदृष्य

सृष्टि के उद्भव काल से ही पृथ्वी के धरातल पर विभिन्न प्रकार की वनस्पतियां अपने अस्तित्व में आयीं । कालांतर में वातावरणीय परिवर्तन के फलस्वरूप वनस्पतियों के विकास में भी आशातीत वृद्धि हुई । इसी क्रम में कई वनस्पतियां विकास की पराकाष्ठा पर पहुंचीं और कुछ जीवन संघर्ष की बलिबेदी पर अपनी आहुति दे बैठीं । यह चक्र प्राचीन काल से ही अनवरत रूप से जीवन के विकास का पर्याय बन गया है । वर्तमान युग में मनुष्य ने अपनी समृद्ध वैज्ञानिक क्षमताओं के बलबूते पर पृथ्वी पर पूर्णतया अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया और अपनी महत्वाकांक्षाओं एवं आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु जीव जंतुओं के उपयोग और दोहन की संपूर्ण सीमाएं पार कर ली हैं । वनस्पति निसंदेह उसके विकास का आधार रही है । फलस्वरूप मानव के मन में पेड़ पौधों के अध्ययन की उत्कंठा पनप उठी और उनके स्वभाव, शारीरिकी, अकारिकी एवं पारिस्थिकीय परितंत्रों का गहन विश्लेषण किया जिससे कि वह अपने लिए नये-नये संसाधनों का परिष्करण कर सके । परिणामस्वरूप पारिस्थितिकीय स्खलन एवं जैव विविधता का घटता आकार वर्तमान विश्व में रौद्र रूप धारण कर सामने आ खड़ा हुआ है ।

जैव विविधता एक व्यापक शब्द है तथा उसका अर्थ एवं विस्तार बहुत व्यापक है । इसमें जंतुओं और वनस्पतियों के अलावा संपूर्ण सूक्ष्मजीवी जैसे विषाणु, जीवाणु, लाइकेन और बीज तथा जनित द्रव्य (जर्मप्लाज्म) भी शामिल हैं । अध्ययन में सुविधा की दृष्टि से जैव विविधता को तीन भागों में बाँटा गया है :

1. आनुवांशिक जैव विविधता : जाति एवं किस्म के जीन में पायी जाने वाली विविधता, उदाहरण के तौर पर गेहूं की फसलों में कुछ रोगों के प्रति प्रतिरोधकता तथा कम पानी में उगने की क्षमता इत्यादि ।
2. वर्ग, जाति एवं किस्म विविधता : इसके अंतर्गत एक ही वर्ग जाति एवं किस्मों में पायी जाने वाली विविधता, जैसे रोजेसी कुल की विभिन्न पादप जातियां रोजा, पोटेन्टिला और उनकी भिन्न किस्में ।
3. पारितंत्र विविधता : अलग-अलग प्रकार की वनस्पतियों एवं जंतुओं का भिन्न पारितंत्र में उगना और पाया जाना । मसलन, आर्द्र एवं गरम जलवायु में वृक्षों के जंगलों की अधिकता और शुष्क तथा कम वर्षा वाले भागों में चरागाहों की अधिकता या शुष्क और ठंडी जलवायु में एल्पाइन मीडोज पारितंत्र ।

वानस्पतिक विविधता उत्तराखंड के संदर्भ में :

हिमालय का विस्तार पूरब से पश्चिम तक लगभग 2500 किमी. लंबा है तथा इसका क्षेत्रफल 2,36,000 वर्ग किमी. है । जैव-भूआकारकीय आधार पर उत्तर प्रदेश के 9 पहाड़ी जिले, जम्मू कश्मीर तथा हिमाचल

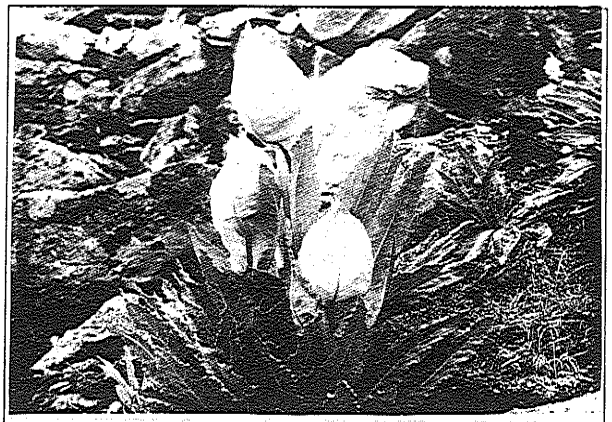

ब्रह्म कमल *(साऊसोरिया आवेलाटा)*

प्रदेश, हिमालय के पश्चिमी भाग के अंतर्गत आते हैं। इस भाग में उच्च हिमालय श्रेणियां (हिमाद्री) जिनका विस्तार 4000 से 8000 मी. तक की ऊंचाई तक है, के अंतर्गत धवल हिमाच्छादित पर्वत श्रृंखला जैसे बंदर पुच्छ (6316 मी.), केदार डोम (6940 मी.), चौखंडा (7138 मी.), कामेत (7756 मी.), नंदा देवी (7816 मी.), त्रिशूल (7120 मी.) हैं। यह भाग निम्न हिमालय श्रेणियों से मेन सेन्टरल "थ्रस्ट" से विभाजित है। निम्न हिमालय पर्वत श्रेणियां, उच्च हिमालय और शिवालिक श्रेणियों के मध्य सैंडविच की तरह फैली हैं। शिवालिक पर्वतमालाएं मुख्य हिमालय के समानांतर फैली छोटे-छोटे अनेक पर्वतों की लंबी श्रृंखला है जो कि 750-1200 मी. की ऊंचाई तक फैली है।

उत्तराखंड हिमालय प्राचीन काल से ही वानस्पतिक समृद्धि के लिए विश्वविख्यात रहा है। सांस्कृतिक, धार्मिक एवं जैव विविधता की समृद्धि एवं विरासत का यह क्षेत्र अनुपम उदाहरण है। जलवायुवीय और भू-आकारिकीय विविधता के कारण यह क्षेत्र न केवल जीव जंतुओं एवं प्रकृति का वरण स्थल है वरन् देवताओं और ऋषि मुनियों का तपस्थल भी रहा है। कवियों की कल्पनाओं की यह भूमि, वैज्ञानिकों एवं शोधार्थियों की जिजीविषा को जगाने वाली एवं पर्यटकों के रोमांच की भी शरणस्थली रही है। कल-कल करती नदियां एवं झरने, गहरी घाटियां, घने जंगलों और रंग बिरंगे फूलों और मखमली घासों में लिपटी सुरम्य उपत्यकाएं, आध्यात्मिक अनुभूतियों और रहस्यों से छिपे ग्लैशियर, इस क्षेत्र को संपूर्ण धरातल से पृथक करते हैं।

उत्तराखंड में वानस्पतिक विविधता का [illegible] प्रमुख कारक विविध भू-आकारिक पारिस्थितियां हैं। ढाल प्रवणता, दिशा तथा ऊंचाई इस क्षेत्र में विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों के विस्तार, "एन्डमिज्म" तथा विभिन्न प्रकार के पादप परितंत्र का निर्धारण करते हैं। इस क्षेत्र की जलवायु मुख्यतः शुष्क और ठंडी है। उपोष्ण कटिबंधीय भागों में पतझड़ वनस्पतियों की बहुलता है। शीतोष्ण कटिबंधीय वन क्षेत्रों में मुख्यतः शंक्वाकार पादप प्रजातियां जैसे एवीज (सिल्वर फर), पाइन्स (चीड़), टेक्सस (थुनेर) सदाबहार पेड़ों, क्वेरेकस (बांझ), रोडोडेन्ड्रान (बुरुस), लेग्युमिनस तथा छोटी-छोटी घास बहुलता में पायी जाती है। उत्तराखंड हिमालय में वृक्ष रेखा (टिंबर लाइन) 2800 से 3000 मी. तक चिन्हित की जाती है। यह क्षेत्र वानस्पतिक विविधता की दृष्टि से अत्यंत समृद्धशील है। बांझ की विभिन्न प्रजातियां, थुनेर तथा एवीज के वृक्ष वनों में ऊपरी सतह (स्ट्रेटीफिकेशन) का निर्माण करते हैं। वनों के धरातल पर छोटे-छोटे आवृत बीजी पौधे, टेरिडोफाइटस, ब्रायोफाइटस एवं लाइकेन की घनी आबादी तथा कई तरह की घासें उगी होती हैं। वृक्ष सीमा के ऊपर शुरू होती हैं एल्पाइन उपत्यकाएं जो कि सहस्र प्रकार की छोटी-छोटी बूटियों एवं मखमली घासों से ढकी रहती हैं। यह भू-भाग वानस्पतिक विविधता के लिए विश्वविख्यात है। एल्पाइन चारागाहों की पादप जातियां वातावरणीय समन्वय तथा उद्भव की दृष्टि से अत्यंत संवेदनशील एवं महत्वपूर्ण हैं। अत्यंत कम तापमान, निम्न वायुमंडलीय दाब, धुंध एवं पाले की अधिकता तथा 5-6 महीनों बर्फ के अंदर ढके होने पर भी इन पौधों में जीवन के लिए संघर्ष तथा अल्प समय में ही अपनी कायिक अवस्थाओं को पूरा करना किसी चमत्कार से कम नहीं है। जलवायु के साथ सामंजस्य तथा अनुकूलन के लिए ही इन पौधों का आकार छोटा होता है, तथा 4-5 महीने के समय में ही अपनी कायिक एवं

जनन अवस्थाओं के चरणों को पूरा करती हैं और बर्फ के अंदर ढकने के पूर्व ही भोजन का पर्याप्त भंडार अपनी जड़ों में संचयित कर लेते हैं ताकि वे नये वृद्धि काल के शुरू होते ही इन घाटियों को अपने विविध रंगों के फूलों से आच्छादित कर सकें । शुष्क एवं ठंडे ढालों (कोल्ड डिजर्ट) पर जूनीयर्स तथा घास की प्रजातियाँ अधिकाधिक मात्रा में होती हैं । एकोनाइटस, एनीमोन, मार्स मेरी गोल्ड (केल्था), ब्ल्यू पॉयी (मीकोनापसिस), हथाजडी (डेक्टाइलोराइजा), कुटकी (पिक्रोराइजा), जंटामांसी (नार्डियोस्टाइकस), फरण (एलीयम), आरचा (रीयम) इत्यादि इस क्षेत्र की प्रमुख वनस्पतियां हैं जो कि जीवदायिनी औषधियों के कारण भी विशेष महत्व रखती हैं ।

इस क्षेत्र की वनस्पति की दूसरी प्रमुख विशेषता "एन्डमिज्म" हैं । यद्यपि इस प्रकार के अन्वेषणों के क्षेत्र में अभी कमी है तथापि एक सर्वेक्षण के अनुसार वनस्पति के अनुसार संपूर्ण वनस्पति की लगभग 28.8 प्रतिशत वनस्पतियां इस क्षेत्र में एंडमिज्म हैं । जिनमें कि 3000 द्विबीजपत्री तथा 1000 एकबीजपत्री प्रजातियां हैं । इनमें से अधिकतर प्रजातियां बरबीडेसी एवं रेननकुलेसी कुल की हैं ।

विभिन्न सर्वेक्षणों और आंकड़ों के अनुसार संपूर्ण उत्तराखंड में लगभग 5,132 किस्मों की 10,440 पादप प्रजातियां हैं जिनमें से 3,200 किस्में और 8000 प्रजातियां आवृत्त बीजी पौधों की, 1,870 जातियां और 6,700 प्रजातियां कवकों की, 565 किस्में और 1,737 प्रजातियां ब्रायोफायइटस की, 130 किस्में और 1,159 प्रजातियां लाइकेन्स की तथा, 150 किस्में और 600 प्रजातियां टेरिडोफायइटस की हैं । इसी तरह से अनावृत्तबीजी पौधों की 7 किस्में तथा 44 प्रजातियां भी इस क्षेत्र में बहुतायत में पायी जाती हैं । पादप कुल के आधार पर जैव विविधता में ऐस्टेरसी कुल की 540 जातियां, पोएसी की 439, लेग्यूमिनेसी की 362 तथा आर्किडेसी कुल की लगभग 255 जातियां संपूर्ण उत्तराखंड में फैली हुई हैं । एस्टरागेलस (10 प्रजातियां), केरस (86), टेरेक्सीकम (80), पोटेन्टीला तथा बरबेरिस (48), साउसूरिया (40), जेन्सीयना और सेक्सीफ्रेगा (39) और पेडीकुलेरिस (35) इस क्षेत्र की प्रमुख जातियां हैं ।

पर्यावरण की दृष्टि से यह क्षेत्र अत्यंत संवेदनशील है । विलुप्त एवं दुर्लभ होती प्रजातियां इस क्षेत्र में पर्यावरणविदों के सम्मुख एक विकट समस्या बन गयी हैं । मृत्यु की तरह विलुप्ति भी प्रकृति का एक शाश्वत नियम है । एक हजार साल में पृथ्वी से कोई न कोई जीव स्वतः ही अपना अस्तित्व खो देता है । परंतु 1600 से 1950 के बीच हर दस वर्ष में एक जीव नष्ट हुआ है । विभिन्न जैव समुदायों में विलुप्ति की दर भिन्न-भिन्न होती है और इसका कारण प्राकृतिक या मानव जनित आपदाएं होती हैं । वर्तमान परिदृश्य में मनुष्य की असीमित महत्वकांक्षाएं और आवश्यकताएं ही विलुप्ति का प्रमुख कारण हैं । एक आकलन के अनुसार 1975-2000 के बीच पृथ्वी से लगभग 4 प्रतिशत प्रजातियां विलुप्त होंगी जिनमें से 7 प्रतिशत केवल पादप प्रजातियां होंगी । आई. सी. यू. की रेड डाटा बुक के अनुसार भारतीय मूल की 215 जातियों को क्षतिग्रस्त घोषित किया गया है । इसी तरह से बी. एस. आई. द्वारा प्रकाशित रेड डाटा बुक में 86 पादप प्रजातियां उत्तराखंड में संकटापन्न घोषित की गयी हैं, जिनमें से लगभग 29 प्रजातियां विलुप्ति की ओर हैं । उल्लेखनीय है कि ये सभी प्रजातियां औषधीय एवं धार्मिक महत्व की हैं जो कि अत्यधिक दोहन की शिकार हुई हैं ।

संरक्षण और संवर्धन :

प्राकृतिक संसाधनों का संवर्धन एवं संरक्षण आज की सबसे बड़ी जरूरत हो गयी है । हमें ऐसे भविष्य की आधार शिला रखनी है जिसमें समृद्धि हो, सुरक्षा हो और जहां जीवन संघर्ष की राह आसान हो । इसके लिए हमें नये संसाधनों की तलाश करनी चाहिए, जिसमें आवश्यकताओं एवं संसाधनों के बीच एक स्वस्थ पारिस्थितिकीय सामंजस्य स्थापित हो । हमारी विकास की नीतियां वातावरणीय साम्यपरक हों । यह सच है की हमने पेड़ पौधों के बारे में उल्लेखनीय जानकारियां

प्राप्त की हैं । परंतु उनके पारिस्थिकीय स्वभाव एवं दोहन की अविवेकपूर्ण नीतियां चुनी हैं । फलस्वरूप उनके पारितंत्र को विनाश के कगार पर सा खड़ा किया हैं ।

जैव विविधता के क्षरण में हमारी सरकारी नीतियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है । शुरु के दशकों में खेती के लिए जंगलों का कटाव बड़े पैमाने पर उत्प्रेरित किया गया । हमारी वन नीतियां अंग्रेजों की उपभोक्तावादी नीतियों का विस्तार मात्र होकर रह गयी हैं । झूम खेती पूर्वोत्तर राज्यों में अभी भी बड़े पैमाने पर जारी है जिसमें वनों का विस्तार संकुचित होता जा रहा है । सरकार ने जैव विविधता के संरक्षण में कुछ प्रयास तो किये हैं । इसी क्रम में हिमालय के क्षेत्रों में एक बायोस्परिक रिजर्व, 15 राष्ट्रीय पार्क, 67 सेंक्चुरियां, जीव संरक्षण एवं संवर्धन के लिए घोषित किये गये हैं । लेकिन सुरक्षित क्षेत्र संपूर्ण उत्तराखंड के क्षेत्रफल का मात्र 4 प्रतिशत ही है । *"एक्स सीटू"* और *"इन सीटू"* संवर्धन के प्रयास जारी हैं परंतु दुर्भाग्यवश ये प्रयास कुछ संस्थाओं तक ही सीमित हैं । सरकारी उपेक्षा और उदासीनता संरक्षण की असफलता का मुख्य कारण है । स्थानीय जनता के सहयोग से संरक्षण एवं संवर्धन के प्रयास किये जाने चाहिए ताकि इन स्थितियों के अवरोधन के सार्थक परिणाम निकल सकें जिससे यह भू-भाग एक बार फिर से अरण्य संस्कृति की अपनी प्राचीन परंपरा का वाहक बन सके ।

डॉ. बी. पी. नौटियाल एवं डॉ. निर्मला पांडे
उच्च शिखर पादप कार्मिकी शोध केंद्र,
पोस्ट बॉक्स नं. 14, श्रीनगर, गढ़वाल-246174

4. सोयाबीन एक चमत्कारी खाद्य

सोयाबीन का वैज्ञानिक नाम ग्लायसीन मैक्स है। यह लेग्नुमिनेसी कुल के उपकुल पेपिलियोनसी का पौधा है । सर्वाधिक प्रोटीन (40%) एवं लगभग 20% तेल वाली विश्व की चमत्कारिक फसल सोयाबीन संभवत: प्राचीनतम फसलों मे से एक है । अधिकांश वैज्ञानिकों के अनुसार इसकी उत्पत्ति दक्षिण पूर्व एशिया के चीन, मंचूरिया एवं जापान के कुछ भाग आदि में हुई है । चीन के राजा "शैन नुंग" द्वारा ईसा पूर्व 2838 में लिखित औषधीय पौधों की पुस्तक "पेन साओ कांगम्यु" में सोयाबीन का प्रथम लिखित उल्लेख मिलता है । इसको चीनी सभ्यता के अनुसार जीवित रहने के लिए आवश्यक पाँच पवित्र खाद्यानों में से एक माना गया है । चीन के अति प्राचीन शब्दकोष "कोनजिया" में इस "टाटिआन" नाम से वर्णन है। वहां इसे "टाटाऊ" भी कहते हैं *(हाइमोषिट्ज 1976)* । प्रसिद्ध चीनी विचारक कंफ्यूसियस के लेखों में "शु" एवं अन्य चीनी पुस्तकों में "सोऊ" के नामों से इसका उल्लेख मिलता है । संभवत: इसका वर्तमान नाम "सोया" उन्हीं से बना है । इसी प्रकार जापान एवं कोरिया में भी सोयाबीन की खेती होने का उल्लेख मिलता है ।

अति प्राचीन भारतीय साहित्यों में सोयाबीन का उल्लेख नहीं मिलता है । सर जे. डी. हुकर द्वारा 1879 में लिखित "फ्लोरा ऑफ ब्रिटिश इंडिया" वॉल्यूम-2 में भारत के सिक्किम, कुंमायु आदि क्षेत्रों में सोयाबीन की उपस्थिति तथा खेती का प्रथम उल्लेख मिलता है । कुडहाऊस एवं टेलर ने भी अफगानिस्तान एवं बर्मा तक सोयाबीन की खेती होने का अनुमान किया है । बीसवीं शताब्दी में भारत में इसकी खेती बढ़ाने के लिए व्यापक प्रयास आरंभ किये गये हैं । 1967 में "भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद" नयी दिल्ली ने सोयाबीन के विभिन्न पहलुओं में किये गये प्रारंभिक अनुसंधानों से प्रभावित होकर "अखिल भारतीय समन्वित सोयाबीन अनुसंधान परियोजना" शुरु की । वर्तमान में इस परियोजना के अंतर्गत 20 से अधिक केंद्रों में सोयाबीन के अन्यान्य पहलुओं पर अनुसंधान हो रहा है ।

1970 के बाद सोयाबीन की खेती में अभूतपूर्व प्रगति हुई तथा 1971-72 में यह 32 हजार हैक्टेयर से बढ़कर 1975-76 में 93 हजार, 1980-81 में 6.07 लाख एवं 1986-87 में 13.91 लाख हेक्टेयर में फैल गयी । वर्तमान में करीब 25 लाख हैक्टेयर में सोयाबीन की खेती मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, बिहार, गुजरात, कर्नाटक, महाराष्ट्र, हिमाचल एवं उत्तर पूर्वी प्रदेशों में होती है ।

इसकी उत्तम पोषक क्षमता के कारण इसे विभिन्न कार्यों में उपयोग कर सकते हैं। भारत में 1950 तक एवं अमरीका में 1940 तक इसे मुख्यतः हरे चारे एवं हरी खाद के रूप में प्रयोग करते थे। भारत एवं अन्य देशों में मुख्यतः इसका तेल निकालने के बाद बची प्रोटीनयुक्त खली का निर्यात करते हैं। लेसिथिन एवं विटामिन 'ए' की उपस्थिति के कारण सोयाबीन तेल मक्खन के समान गुणकारी होता है। सोयाबीन वसा में उपस्थित विटामिन 'ए', 'डी' एवं जल, घुलनशील विटामिन 'बी' जंतुओं की वृद्धि में सहायक होते हैं। इसकी पौष्टिकता के कारण इसका आहार में उपयोग बढ़ रहा है। सोयाबीन वसा में उपस्थित कार्बोहाइड्रेट, खनिज विटामिन एवं उच्च स्तर की 40% प्रोटीन इसे एक आदर्श आहार बनाते हैं। स्टार्च की मात्रा नगण्य होने के कारण यह मधुमेह रोगियों के लिए भी उपयोगी है। इससे कई अन्य व्यंजन भी बनाये जा सकते हैं।

खाद्य तेल की समस्या के निदान हेतु गठित "तकनीकी मिशन" ने भी अपनी रिपोर्ट में मूंगफली, राई, सरसों के साथ सोयाबीन को भी सम्मिलित किया है। भारत में प्रचलित दलहनी फसलों में सोयाबीन सर्वाधिक उत्पादन (अनुकूल परिस्थितियों में 30 से 35 क्विंटल प्रति हैक्टेयर) देती है। इसके अतिरिक्त अत्यधिक असमान एवं विभिन्न परिस्थितियों के अनुसार अपने को ढालकर संतोषजनक उत्पादन दे सकने की क्षमता एवं विभिन्न उपयोगों के कारण यह काफी क्षेत्रों में लोकप्रिय हो गयी है। यह कम तथा अधिक वर्षा, दोनों ही स्थितियों को सहन कर, अन्य फसलों की अपेक्षा कहीं अधिक उत्पादन देने में सक्षम है। यह वायुमंडल से प्रति हैक्टेयर 115 किग्रा. नाइट्रोजन स्थिरीकृत कर अपनी आवश्यकता पूर्ण करने के बाद लगभग 25 से 30 किग्रा. नाइट्रोजन मृदा को देती है। इसकी पत्तियां तथा 9% नाइट्रोजन, 12% फॉस्फोरस एवं 8.9% पोटाश युक्त भूसा भी भूमि में मिलकर उसकी उर्वरता एवं संरचना को उत्तम बनाते हैं।

यह एक कटु सत्य है कि भारत में आज भी असंतुलित आहार एवं कुपोषण के कारण बहुसंख्यक लोग विभिन्न रोगों से ग्रसित रहते हैं, जिससे यहाँ पर औसत कार्य क्षमता एवं आयु अन्य विकसित देशों की अपेक्षा कम है। इस संदर्भ में सोयाबीन एक चमत्कारी खाद्य है जिसका उपयोग प्रचलित कर कुपोषण की विकराल समस्या का सामना किया जा सकता है। यद्यपि सोयाबीन देश के कई प्रदेशों की एक महत्वपूर्ण फसल हो गयी है परंतु कृषक एवं सामान्य वर्ग में घरेलू भोजन के रूप में इसे अभी प्रयोग नहीं किया जाता है। देश में कुपोषण की विकराल समस्या के बावजूद सर्वाधिक प्रोटीन वाली फसल सोयाबीन से आज तेल निकालने के बाद प्रोटीन से भरपूर खली को विदेशों को निर्यात कर दिया जाता है। इस प्रकार सोयाबीन उद्योग के लिए हम विदेशों पर निर्भर रहते हैं। इसी प्रकार देश में अधिकतर लोग शाकाहारी हैं एवं अधिक मूल्यों के कारण प्रोटीन के प्रमुख स्रोत मछली, मांस, अंडों का उपयोग नहीं कर पाते। इसी प्रकार मध्यम एवं निम्न आय वर्ग में क्रय क्षमता की कमी से पौष्टिक भोजन के अन्य स्रोत फल, दूध, घी, दही आदि का उपयोग भी कम होता है। इससे देश भर में बहुत से लोग प्रोटीन, अनिवार्य वसीय अम्ल, विटामिन ए, बी, सी, डी एवं खनिज लवण जैसे कैल्सियम, लोहा, आयोडीन आदि की कमी से प्र[illegible]ित है।

सोयाबीन में उपस्थित विभिन्न प्रकार के विटामिनों का संगठन तालिका-1 में दिया गया है।

उपयोग

1. सोयाबीन के आटे को गेहूं के साथ मिलाकर विभिन्न व्यंजन बनाने में उपयोग होता है।
2. इसके भीगे हुए दानों को पीसने के बाद उबालकर दूध भी बनाया जा सकता है जिसकी प्रोटीन 35-100 % तक सुपाच्य होती है।
3. सोयाबीन दूध से दही, पनीर, चॉकलेट, केक आदि भी बनाये जा सकते हैं। चीन एवं जापान में इसको जमाकर टोफू तथा अन्य व्यंजन बनाये जाते हैं।
4. चीन, जापान, कोरिया आदि देशों में खमीर बनाकर सोयाबीन का उपयोग किया जाता है। वहां सोयाबीन को भिगोकर अंकुर निकालते हैं जिसे सलाद में या सब्जी के रूप में प्रयोग करते हैं।

तालिका-1 : सोयाबीन में उपस्थित विटामिनों की मात्रा

विटामिन	मिग्रा.
थायमिन	11.0-17.5
रिबोफ्लेविन	3.4-3.7
नियासिन	21.4-23.0
पाइरिडाविसन	7.1-12.0
पेन्टीथीनिक अम्ल	13.0-21.5
बायोटिन	0.8
फोलिक अम्ल	1.9
कोलिन	3
इनोसिटॉल	2
केरोटिन	0.18-2.43
विटामिन 'ई'	1.4
विटामिन 'के'	1.9

तालिका-2 : सोयाबीन में उपस्थित खनिज तत्त्व

(इनके अलावा मैंगनीज, सेलेनियम, आयोडीन एवं तांबे की भी कुछ मात्रा सोयाबीन में पायी जाती है ।)

खनिज तत्त्व	मिग्रा/ 100 ग्राम
कैलसियम	220-280
फास्फोरस	590-660
आयरन	8-18
पोटेशियम	1670-2090
सोडियम	340-380
मैग्नीशियम	220-240
सल्फर	4.0
जस्ता	2.7

5. सोयाबीन के दूध पर जो मलाई पड़ जाती है इसे "युबा" कहते हैं इसका उपयोग चीन एवं जापान में होना है ।
6. जापान में दो विशेष खाद्यान्न "नाटो" एवं "मीसो" सोयाबीन से बनते हैं ।

इसके अतिरिक्त सोयाबीन का उपयोग रबर के खिलौने, जूते, टायर बनाने में, औषधि निर्माण में, रंग, प्लास्टिक एवं साबुन उद्योगों में भी होता है ।

इस प्रकार सोयाबीन मानव के लिए बहुपयोगी एवं चमत्कारी खाद्य है तथा भारत में इसका भविष्य उज्जवल प्रतीत होता है । इसकी नयी उन्नत किस्मों का प्रयोग कर एवं इसकी कीड़ों से रक्षा कर अधिकतम फसल प्राप्त की जा सकती है, जिससे भारत की आर्थिक समृद्धि एवं कुपोषण की समस्या से निजात पाने में सहायता मिलेगी ।

एन. के. बोहरा
प्लॉट नं. 389, स्ट्रीट नं. 10,
मिल्क मैन कॉलोनी, पालरोड, जोधपुर

5. प्रदूषण का एक नया स्वरूप : इलेक्ट्रो प्रदूषण

प्रदूषण के कई आयाम हैं, जैसे जल प्रदूषण, वायु-प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, रेडियोधर्मी प्रदूषण, तापीय प्रदूषण आदि । किंतु अब इन सबसे भिन्न एक नये प्रदूषण ने जन्म ले लिया है जिसे इलेक्ट्रो प्रदूषण कहा जा रहा है ।

कुछ समय पूर्व अमरीका के अखबारों में वैद्युत चुंबकीय विकिरण (इलेक्ट्रोमैगनेटिक रेडिएशन) के प्रदूषण के खतरों के बारे में चेतावनी देने वाले लेख प्रकाशित हुए थे । लेख में प्रकाशित सामग्री के अनुसार इलेक्ट्रो प्रदूषण उत्पन्न करने में सेलुलर फोन अहम भूमिका निभा रहे हैं ।

ऐसा नहीं है कि इलेक्ट्रोप्रदूषण का खतरा मात्र सेलुलर फोन से ही उत्पन्न होता है बल्कि राडार, हैम रेडियो, एफ. एम. रेडियो, सेटेलाइट नेटवर्क जैसे उपकरणों से भी रेडियो तरंगें निकलती हैं किंतु सेलुलर फोन से उत्पन्न होने वाली तरंगें कुछ अधिक ही खतरनाक होती हैं । वास्तव में सेलुलर फोन से निःसृत फ्रीक्वेंसी दिमाग की प्राकृतिक फ्रीक्वेंसी से अधिक मेल खाती है एवं संभवतः इसी अनुस्पंदन के कारण मानव मस्तिक पर्याप्त मात्रा में रेडिएशन को आत्मसात कर लेता है । सामान्यतया सेलुलर फोन का एंटीना उपभोक्ता के मस्तिष्क के आस-पास ही रहता है जिससे मस्तिष्क के ऊतक (टिशू) विकिरण से अधिक प्रभावित हो जाते हैं । इसकी फ्रीक्वेंसी 100 मिलियन हर्ट्ज होती है । इसका तात्पर्य

यह है कि फ्रीक्वेंसी का दिमाग के ऊतकों पर एक सेकंड में 10 करोड़ बार आक्रमण होता है ।

वैसे अधिकांश सेलुलर फोन कंपनियां मैनुअल में लिख देती हैं कि इस सेलुलर फोन से एंटीना का शरीर के किसी भी अंग से स्पर्श नहीं होना चाहिए किंतु बहुत कम लोग ही इस सावधानी पर ध्यान देते हैं ।

शोधकर्ता रेडियो फ्रीक्वेंसी के मानव मस्तिष्क पर पड़ने वाले प्रभाव को जानने हेतु अध्ययनरत हैं । इन अध्ययनों के दौरान पशुओं पर किये गये प्रयोग के परिणाम काफी चौंकाने वाले एवं चिंतनीय हैं । प्रयोग से यह निष्कर्ष निकला है कि जिन पशुओं पर प्रयोग किया गया उनकी प्रतिरोधात्मक क्षमता में कमी आ गयी तथा अनेक मामलों में दिमाग के ट्यूमर में भी वृद्धि के लक्षण पाये गये ।

एक शोध अध्ययन से यह ज्ञात हुआ है कि रेडियो का प्रयोग करने वाले लोगों में रक्त कैंसर की शिकायत अधिक पायी जाती है । अमरीका के नॉर्थ कैरोलीना में इलेक्ट्रोमैग्नेटिक रडिएशन से संबंधित कार्यों में लगे 13,000 लोगों के बारे एक अध्ययन किया गया जिसमें पाया गया कि इनमें 144 व्यक्ति मस्तिष्क कैंसर के शिकार थे जबकि 10,000 सामान्य अमरीकी लोगों में से मात्र 6 ही मस्तिष्क कैंसर के शिकार पाये जाते हैं ।

वैक्यूम क्लीनर, इलेक्ट्रिक शेवर एवं हेयर ड्रायर भी इलेक्ट्रो-प्रदूषण में अपनी अहम भूमिका निभाते हैं । अपने देश में अभी बिजली से गरम किये जाने वाले कंबलों का प्रचलन कम है किंतु अनेक विकसित देशों में इसके प्रयोग से गर्भपात के मामलों में वृद्धि हुई है ।

अमरीका एवं रूस में ऐसी रेडियो तरंगों के प्रयोग परीक्षण की बात कुछ समय पूर्व ही सामने आयी थी जो शत्रु क्षेत्र को निष्क्रिय बना दें । ये तरंगें व्यक्ति को निरंतर सिरदर्द, अनिद्रा, थकावट, बैचैनी, मितली एवं उदासी का शिकार बना देती हैं । वास्तव में ये तरंगें अवरक्त रेडियो स्तर की होती हैं ।

एक ओर जहां हम वायु, जल, ध्वनि आदि प्रदूषणों से छुटकारा पाने या निपटने का समुचित उपाय भी नहीं ढूँढ़ पाये थे कि इलेक्ट्रो प्रदूषण का नया खतरा अपना विकराल रूप लिए हमारे सिर पर मंडरा रहा है और भविष्य में इसके बढ़ने की ही संभावना है ।

डॉ. गणेश कुमार पाठक
प्रतिभा प्रकाशन, बलिया-277001 (उ.प्र.)

6. वैम एक उपयोगी जैव उर्वरक

वैम एक प्रकार का सहजीवी कवक है, जो पादप समुदाय के लगभग 97 प्रतिशत पौधों में पाया जाता हे, किंतु वातावरण एवं परिस्थितियों के कारण इनके संक्रमण में अंतर पाया जाता है । ये कवक मूल पौधों को आवश्यक पोषक तत्त्व जैसे : फॉस्फोरस, जिंक, कॉपर, मैंगनीज इत्यादि देते हैं तथा बदले में पौधों से कार्बोहाइड्रेट प्राप्त कर अपना जीवन-चक्र पूरा करते हैं ।

वैम की संरचना :-

वेसीकुलर आरबिस्कुलर माइकोराइज़ा (वैम) के बीजाणु मृदा में निश्चल अवस्था में पड़े रहते हैं । अनुकूल परिस्थितियाँ होने पर ये अंकुरित होकर पौधों की जड़ों में प्रवेश कर अपना जीवन-चक्र प्रारंभ करते हैं । प्रारंभिक अवस्था में ये कवक जाल फैलाते हैं तथा अंत:कोषीय "अरबस्कुलस" बनाते हैं जिनके सिरे अगुंली के आकार के कई भागों में बंटे रहते हैं । इनका कार्य कवक को कार्बोहाइड्रेट पहुँचाना होता है तथा बदले में अघुलनशील फॉस्फेट को घुलनशील फॉस्फेट में परिवर्तित कर पौधों को पहुँचाना होता है । कहीं-कहीं पर यह पुटि्टका (वैसिकल्स) का निर्माण करते हैं, जिनके अंदर इनका भोजन संग्रहित रहता है जो कि विषम परिस्थितियों में पोषण के काम आता है । मूल के बाहरी हिस्से में कवक जाल असंख्य अपरिपक्व बीजाणु बनाते हैं जो परिपक्व होकर पुन: अन्य पौधों की जड़ों में अकुंरित होकर अपना जीवन-चक्र पूरा करते हैं । इनका आकार अन्य कवकों के बीजाणुओं से बड़ा होता है । ये 45 से 500 माइक्रॉन तक हो सकते हैं ।

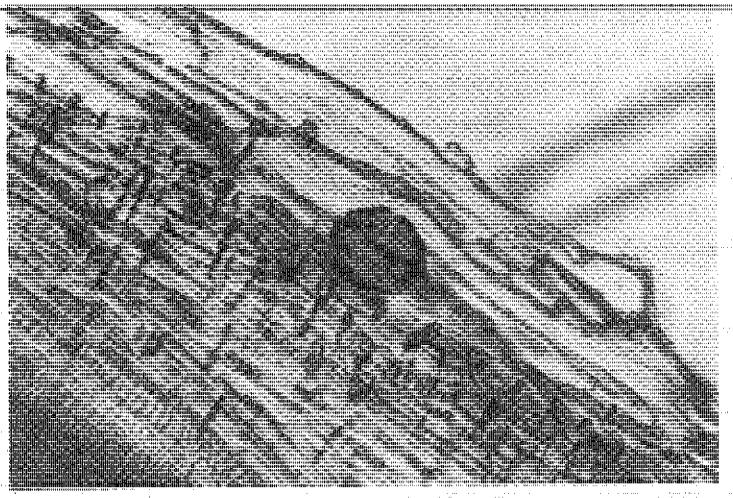

वैम से संक्रमित जड़ (पुट्टिका का निर्माण)

वैम कल्चर बनाने की विधि :-

वैम कल्चर बनाने के लिए इसका प्रारंभिक कल्चर किसी संस्थान से प्राप्त कर ठंडी जगह (रेफ्रिजरेटर) में सुरक्षित रखें । इसकी तैयारी के लिए मृदा तथा बालू का मिश्रण 50 : 50 छान कर तैयार करें । इस मिश्रण को गमलों में 3/4 भाग तक भर दें । इसके पश्चात प्रारंभिक कल्चर की एक सतह बिछा दें । इसके ऊपर मिश्रण की सतह डालकर ज्वार या मक्का के बीज बो दें । बीजों को मिश्रण से ढक कर आवश्यकनुसार पानी दें । कम से कम तीन माह तक नियमित देख-भाल करने के पश्चात पौधों के ऊपरी भाग को कैंची से काट दें । जड़ों को मिट्टी सहित बाहर निकाल कर बारीक काट लें । अब मिश्रण (वैम कल्चर) उपयोग में लाया जा सकता है । यदि अधिक मात्रा में कल्चर तैयार करना है तो जमीन में 1 x1 मीटर का गड्ढ़ा 25-30 सेमी. तक गहराई तक खोद लें । इसकी मिट्टी निकाल कर उपर्युक्त विधि से कल्चर तैयार करें ।

वैम कल्चर देने की विधि :-

1) क्यारी में पौधे तैयार करते समय वैम कल्चर की एक पर्त, बीज बोने से पूर्व बिछा दें । कल्चर की मात्रा एक किग्रा. प्रतिवर्ग मीटर की दर से पर्याप्त है । इस पर्त के ऊपर मिट्टी की एक या दो इंच की सतह देकर बीजों को बोना चाहिए । इससे बीज अकुंरित होने के पश्चात् अच्छी तरह वैम से संक्रमित हो जाते हैं ।

2) यदि नर्सरी में पॉली बैग्स में कल्चर देना चाहें तो पौधों के चारों ओर चार/पाँच (कम से कम 4 इंच गहरे) सुराख बना दें । अब इन सुराखों को कल्चर से भर दें तथा मिट्टी को दबाकर हल्का सा पानी दें ।

3) पुराने पेड़ों पर इसका प्रभाव देखने को नहीं मिलेगा, क्योंकि पेड़ों की जड़ें कल्चर को ग्रहण नहीं कर पातीं । नवारोपित वृक्षों में 50 ग्राम प्रति पौधों की दर से चारों ओर सुराख बनाकर कल्चर देना चाहिए ।

नीलम वर्मा एवं डॉ. के. के. श्रीवास्तव
शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर -342 005

विज्ञान समाचार

भा. प. अ. केंद्र से :

1. गामा-किरण खगोल भौतिकी प्रयोगशाला :

लगभग एक साल पूर्व 13 अक्टूबर 1997 को परमाणु ऊर्जा आयोग के अध्यक्ष और भारत सरकार के सचिव डॉ. आर. चिदंबरम् ने माऊँट आबू में बन रही गामा-किरण खगोल भौतिकी प्रयोगशाला का उद्घाटन किया था । यह खगोल भौतिकी प्रयोगशाला भा. प. अ. केंद्र द्वारा स्थापित की जा रही है ।

गामा-किरण खगोलिकी, हाल ही में विकसित अनुसंधान का क्षेत्र है । ब्रह्मांड के कई प्रसिद्ध रहस्यों को सुलझाने और उसमें स्थित कई खगोल भौतिकीय पदार्थों की जांच पड़ताल करने के लिए यह विज्ञान एक विशिष्ट शक्तिशाली निदानात्मक विधि प्रदान करता है । मंदाकिनीय नाभिकों के केंद्रीय ऊर्जा स्रोतों की प्रकृति के रहस्य तथा घनीभूत पिंडों, जैसे कृष्ण विवर (ब्लैक होल), एक्सरे-युग्म तारों, न्यूट्रॉन तारों एवं सुपरनोवा अवशेषों में तथा उनके इर्द-गिर्द होने वाली ऊर्जा प्रक्रियाओं आदि को समझने में इस विज्ञान का योगदान होगा । वर्णक्रम के इस भाग का अध्ययन पृथ्वी पर लगातार बरसने वाली सर्वव्यापक कॉस्मिक किरणों के कणों के उद्गम के रहस्य को सुलझाने में महत्वपूर्ण संकेत दे सकता है ।

मंदाकिनियों से बाहर स्थित (अधिमंदाकिनीय) पिंडों, सक्रिय मंदाकिनीय नाभिकों व क्वासरों (रश्मियों के सुदूर स्रोतों) की गामा-किरणों के निरीक्षण से विभिन्न अधिमंदाकिनीय रश्मि-क्षेत्रों (रेडिएशन-फील्ड्स) की सघनता (घनत्व) और उनके आकाशीय (spatial) वितरण को समझने में मदद मिल सकती है, विशेषतःउन रश्मि क्षेत्रों की, जो अवरक्त किरणों तथा परा बैंगनी किरणों के बीच की तरंग दैर्घ्य के हैं । गामा-किरण खगोलिकी से सृष्टि की आयु भी ज्ञात होने की आशा है । संसार की कई प्रसिद्ध तथा अग्रणी प्रयोगशालाओं में आजकल, आधुनिक नवीनतम हार्डवेयर तथा सॉफ्टवेयर सामग्री की मदद से उपग्रह व भू-स्थित सुविधाओं का उपयोग कर, गामा-किरण खगोलिकी द्वारा सृष्टि के बारे में नयी जानकारी प्राप्त करने के कई प्रयोग किये जा रहे हैं ।

गौरीशंकर, माउंट आबू में स्थापित की जा रही खगोलिकी प्रयोगशाला, ग्रेस (GRACE) विश्व स्तर की आधुनिक सुविधा है । इस प्रयोगशाला की खास बात यह है कि एक अत्यंत सामयिक महत्वपूर्ण विषय का वैज्ञानिक अन्वेषण, एक ही भू स्थल से किया जा सकेगा । यहां पूर्ण गामा-किरण वर्णक्रम फोटॉन ऊर्जा (10 KeV से लेकर 100-TeV) तक का अध्ययन संभव होगा । इस मुख्य उद्देश्य को ध्यान में रखकर चार, अति सुग्राही प्रयोग; टेक्टिक (TACTIC), मिस्टिक (MYSTIQUE), मेस (MACE) व बेस्ट (BEST) माउंट आबू में सुनियोजित तरीके से अगले वर्षों के दौरान स्थापित किये जा रहे हैं । इस हेतु, सभी आवश्यक आधारिक संरचना (इन्फ्रा स्ट्रक्चर) जुटायी जा रही हैं ताकि निश्चित समयानुसार परियोजना के सभी उद्देश्य पूरे किये जा सकें । पहले तीन टेलिस्कोपों द्वारा वातावरणीय सेरेंकोव तकनीक का उपयोग कर, 10 GeV से लेकर 100 TeV तक के गामा-किरण स्रोतों का अध्ययन किया जायेगा तथा चौथे प्रयोग, 'बेस्ट' द्वारा 10 KeV से लेकर 100 MeV तक ऊर्जा पट्ट का अन्वेषण वातावरणीय प्रस्फुरण (सिंटिलेशन) तकनीक से किया जायेगा । इसके द्वारा भूमि से ही ब्रह्मांडीय गामा-किरणों के अचानक होने वाले विस्फोटों (बर्स्टों) का पता लगाकर, उनके स्रोतों की उपस्थिति का आकाशीय निर्धारण अब तक उपलब्ध (उपग्रह आधारित से प्राप्त) परिणामों की तुलना में अधिक परिशुद्धता से हो सकेगा ।

टेक्टिक व्यूह (ऐरे) में चार पूर्णतः कर्णनीय (स्टीयरेबल) (Steerable) टेलिस्कोप निकाय हैं । प्रत्येक निकाय में 3.5 मीटर द्वारक (एपर्चर) का प्रकाश संग्राहक है जो उन्नतांश-दिगंशी (आल्टीट्यूड-एजीमथ) आधार पर स्थित है, जिसे एक समान (सिंक्रोनाइज्ड) कंप्यूटर नियंत्रित परिचालन निकाय से संचालित किया जा सकता है ।

मिस्टिक निकाय में बृहद-क्षेत्रफल विशाल कोण (लार्ज-एरिया वाइड-एंगिल) के लगभग 200 सेरेंकोव प्रकाश संसूचक होंगे जो 600 मी X 600 मी. के क्षेत्र में फैले रहेंगे। इस प्रस्ताविक व्यूह की मुख्य बातें; इसका असामान्य रूप से व्यापक बड़ा प्रभावी क्षेत्र (0.4 किमी^{2}) निम्न गामा-किरण देहली (थ्रेसहोल्ड) ऊर्जा (लगभग 5 TeV), श्रेष्ठ कोणीय विभेदन (0.25^0) और लगभग पूर्ण-आकाशीय अनुक्रिया (रिसपॉन्स) हैं। प्राथमिक गामा-किरण ऊर्जा के लिए मिस्टिक की फ्लक्स-सुग्राहकता काफी अधिक अभिकल्पित की गयी है ताकि यह आकाश के महत्वपूर्ण भाग (TeV ऊर्जा क्षेत्र) का, जिसका अधिक अन्वेषण नहीं हुआ है, संवेदनशील सर्वेक्षण कर सके। यह व्यूह निकाय अत्यधिक संवेदनशील सर्वेक्षण यंत्र, अज्ञात स्रोत खोजी तथा अकल्पित दिशाओं से होने वाले कदाचनिक उत्सर्जनों का पता लगाने वाले यंत्र के रूप में विशेष उपयोगी होगा।

मेस टेलिस्कोप प्रणाली से 20 - 200 GeV तक के परास ऊर्जा वाले गामा-किरण फोटानों का अध्ययन किया जा सकेगा जो टेक्टिक से संभव नहीं है, अत: यह मेस प्रणाली खास तौर से मंदाकिनी से बाहर स्थित गामा-किरण स्रोतों का पता लगाने में उपयोगी होगी। मेस टेलिस्कोप की तकनीक भी, टेक्टिक की तरह, सेरेंकोव प्रतिबिंब तकनीक पर आधारित होगी। इसमें 25 मीटर व्यास का परावलयिक प्रकाश परावर्तक होगा, जिसके फोकस तल में आधुनिकतम यंत्र होंगे। मेस का दर्पण, बेस्ट के प्राथमिक संग्राहक का भी कार्य करेगा। बेस्ट यंत्र, गामा-किरणों के अल्प कालिपक उत्सर्जनों का, जिनकी फोटान-ऊर्जा 100 KeV-100 MeV होती है, वातावरणीय प्रस्फुरण तकनीक से ज्ञात करेगा। फ्लोरेसेंट प्रकाश संसूचकों पर आधारित प्रकाश-प्रवर्धकों का एक सुरक्षा-चक्र मेस के सेरेंकोव प्रतिबिंब कैमरे के चारों तरफ़ होगा जो बेस्ट के फोकस तल यंत्र का भी कार्य करेगा। पृथ्वीय धरातल से ब्रह्मांडीय गामा-किरण विस्फोटों का खगोल भौतिकीय अध्ययन करने का प्रथम गंभीर प्रयास बेस्ट-प्रणाली है।

2. डायमंड निक्षेपण विधि विकसित :

प्रकृति ने कई असाधारण गुणों का संगम हीरों को प्रदान किया है। हीरों के अनुप्रयोगों की संभावनाएं बहुत ज्यादा हैं और अत्यधिक धन दांव पर लगा है। कई व्यावहारिक अनुप्रयोगों में हीरा पतली परत (थिन फिल्म) के रूप में जरूरी होता है। अपने देश में हीरों के परत संबधी अनुसंधान व अनुप्रयोगों में भा. प. अ. केंद्र का रसायन प्रभाग अग्रणी रहा है तथा कई प्रथम उपलब्धियां इसके खाते में दर्ज हैं।

तप्त तंतु रासायनिक वाष्प निक्षेपण (हॉट फिलामेंट) केमिकल वेपर डिपॉजिशन (HFCVD) और ऑक्सी एसेटिलीन लौ (फ्लेम) के तकनीकी क्षेत्रों में प्रभाग ने काफी कार्य किया है। इस वाष्प निक्षेपण विधि की बुनियादी सीमाओं को हटाने में, संवहनी प्रवाह (कन्वेक्टिव फ्लो) का इस्तेमाल एक मौलिक व सूझबूझ पूर्ण योगदान है। शुद्ध प्रावस्था (फेज) वाले, स्व-आधारित असामान्य (एक्सोटिक) हीरक आकारों; जैसे हीरक नलिकाएं, खोखली हीरक कुंडलिनी (हेलिक्स) एवं हीरक छलनी आदि को बनाने की विधि विकसित की गयी है। ऐसी धातु-कुचालक-अर्धचालक (MIS) संरचनाएं निर्मित की गयी हैं जो 200 ^{0}C तापमान तक और 10M रेड की γ किरण उद्भासन पर भी स्थायी (स्टेबल) रहती हैं। हीरक विलेपित मोलिबेडिनम कर्तक (कटर), जिससे सूक्ष्मदर्शी की कांच की स्लाइडें और सिलिकॉन वेफर्स आसानी से काटे जा सकते हैं, भी विकसित किया गया है।

आर्थिक पहलू को ध्यान में रखकर सुविधा को इतना बड़ा बनाया गया है कि उससे 4 इंच व्यास के आधार पर उच्च गुणवत्ता की सुनिश्चित गुणों वाली हीरक परत विलेपित की जा सके। इस सुविधा का इस्तेमाल कर कई विभिन्न उत्पादों, जैसे टंगस्टन कार्बाइड औजारों से जुड़े इनर्स्टस, मोलिबेडिनम नलिकाओं की भीतरी सतह, मोलबेडिनम नलिकाओं को काटने हेतु कर्तक चक्र, चार इंच व्यास के सिलिकॉन वेफर्स आदि का हीरकविलेपन किया गया है। बनाने गये कई औजारों का इस्तेमाल मेसर्स लार्सेन ट्यूबरो लि.,

मुंबई ने LV27 ग्रेड वाले एल्युमिनियम के एक कार्य (जॉब) पर सफलता पूर्वक किया है। औजारों की आयु संतोषजनक तथा संपादित जॉब का फिनिश भी बेहतर पाया गया। एक्स-रे हेतु एक इंच व्यास की खिड़कियां (विंडोस) भी विकसित की गयी हैं - जिनका एक्स-रे पारगमन (ट्रांसमीशन) काफी ज्यादा है। छोटे आकार, 3 - 4 मिमी. व्यास वाली खिड़कियाँ तो 600 मिमी. मर्करी का विभेदी (डिफ्रेंशियल) दाब भी सह सकीं।

3. अतिशुद्ध नियोडिमियम के लिए विलायक निष्कर्षण (सॉल्वेंट एक्सट्रेक्शन) विधि विकसित :

नियोडिमियम धातु बनाने के लिए अतिशुद्ध नियोडिमियम आक्साइड की जरूरत होती है। स्थायी चुंबक बनाने के लिए नियोडिमियम धातु का प्रयोग नियोडिमियम लौह / बोरॉन की मिश्र धातु (एलॉय) बनाने में होता है। इन स्थायी चुंबकों का इस्तेमाल कंप्यूटर संबंधी यंत्रों (पेरिफेरलों), संहत (कांपेक्ट) डिस्कों, चुंबकीय अनुनाद बिंब टोमोग्राफी व उच्च वेग वाले रोटरों के निर्माण में होता है।

इसका कच्चा माल मिश्रित रेअर मृदाओं (मिक्सड रेअर अर्थ्स) के रूप में तमिलनाडु की समुद्र तटीय रेत से मिलता है। रेत को भारतीय विरल मृदा लि. (इंडियन रेअर अर्थ्स लि.) द्वारा उपचारित किया जाता है। विरल मृदा तत्वों को अलग-अलग प्राप्त करने के लिए, विलायक निष्कर्षण विधि का उपयोग, नियंत्रित परिस्थितियों में कई चरणों में करना पड़ता है। इसके लिए पदार्थ ग्रुप के विरल मृदा विकास विभाग ने अनेक प्रयोगों व गणनाओं के बाद, 2-ईथाइल हेक्सिल फॉस्फोनिक अम्ल (EHPNA) का इस्तेमाल कर एक विधि विकसित की है। नब्बे चरणों वाली मिश्रण - निःसादक (मिक्सचर - सेटलर) विधि के प्रक्रम प्राचलों (प्रोसेस पैरामीटरों) को अधिकतम उत्पादन हेतु निश्चित कर लिया गया है। परिशुद्ध केरोसीन में 1M EHPNA व आयसो डेकानोल प्रावस्था-परिवर्तक (फेज मोडीफायर) के मिश्रण को विलायक की तरह इस्तेमाल किया गया है। निष्कर्षण में प्रयोग करने से पूर्व विलायक का 30 प्रतिशत सेपोनिफिकेशन किया जाता है। Nd और अन्य मृदा तत्त्वों से युक्त सारसत्त (एक्स्ट्रेक्ट) को, अशुद्धि कारक तत्त्वों से मुक्त करने के लिए, साठ चरणों में उत्पाद घोल के एक अंश से स्क्रब किया जाता है। शुद्ध सारसत्त को तनु HCl अम्ल से 12 चरणों में स्ट्रिप कर उत्पाद घोल प्राप्त करते हैं, उत्पाद घोल का कुछ भाग पुनः रिफ्लक्स किया जाता है और शेष भाग से 99% से अधिक शुद्धता का नियोडिमियम ऑक्साइड, आक्ज़लेट अवक्षेपण व केलशिनेशन द्वारा, प्राप्त करते हैं। इस अनुसंधान एवं विकास कार्य की एक खास बात इस प्रक्रम के लिए विशेषतः विकसित आर्टिफिशल न्यूराल नेटवर्क (ANN) का पीसी आधारित अनुकूलन (ओप्टीमाइजेशन) प्रोग्राम है।

इस विधि का परीक्षण IREL आल्वे में किया गया है और कई टन उच्च गुणवत्ता (अंतर्राष्ट्रीय स्तर का) वाला माल बनाया जा चुका है। बड़े पैमाने पर उत्पादन हेतु नियोडिमियम संयंत्र लगाने की योजना बन रही है जो शायद संयुक्त क्षेत्र में होगा।

प्रस्तुति : **कैलाश चंद्र भल्ला**
संपादक वैज्ञानिक
बी-12, गीतांजली, प्लॉट न. 52,
सेक्टर-17, वाशी, नवी मुंबई -400 705

अन्य विज्ञान समाचार

1. दिमागी चोटों के बारे में कृत्रिम सिर द्वारा जानकारी :

हालांकि मस्तिष्क केवल एक जटिल कंप्यूटर के समान लगता है फिर भी उसकी श्रेष्ठता के बारे में दो राय नही हैं। ब्रिटेन के प्रतिरक्षा मूल्यांकन तथा शोध एजेंसी यानी डेरा (DERA) में कार्यरत वैज्ञानिकों एवं इंजीनियरों ने हाल ही में एक ऐसा कृत्रिम मानव मस्तिष्क बनाया है जिससे यह पता चलाया जा सकता है कि मनुष्य के सिर पर जब जोर से चोट अथवा आघात लगता है तो मस्तिष्क में किस प्रकार की परिघटनाएं

होती हैं । इस कृत्रिम मस्तिष्क का नाम डेरामैन रखा गया है । यह काल्पनिक मस्तिष्क से भिन्न है क्योंकि इस समरूपित मस्तिष्क के निर्माण में प्रयुक्त विशेष पदार्थ मानव मस्तिष्क के क्रिया-कलापों को पूरी तरह से अनुकरण यानी नकल करने में समर्थ है । इन उन्नत किस्म के पॉलीयूरेथेन पदार्थों में सूक्ष्म एवं अति संवेदी डिटेक्टर रहते हैं जो चोट लगने से उत्पन्न अत्यंत हानिकारक स्ट्रैस तरंगों का मॉनिटरन करके शोध कर्ताओं को मस्तिष्क के विभिन्न भागों में होने वाले प्रभावों के बारे में सही जानकारी देते हैं ।

उल्लेखनीय है कि संसार में प्रतिवर्ष एक लाख से भी अधिक मौतें सिर पर चोट लगने से होती हैं और लगभग नब्बे हजार लोग अपंग यानी डिसएबिल्ड हो जाते हैं ।

इस नये तरीके के उपयोग से वैज्ञानिक सिर पर लगने वाली चोटों के खतरों के बारे में अत्यंत सही गणनाएं करने में समर्थ हो जायेंगे और सिर के बचाव के लिए अभी तक प्रयुक्त होनेवाले उपकरणों की सही क्षमता मालूम पड़ जायेगी । फिर इस आधार पर अधिक प्रभावी उपकरण को बनाया जा सकेगा ।

इस नये उपकरण में प्रयुक्त यंत्रीकरण की मदद से चोट अथवा आघात लगने से मस्तिष्क के अंदर जो हलचल, उच्च स्ट्रैस तरंगों का गमन, विभिन्न घटकों का त्रिविमीय सापेक्षिक गमन, इत्यादि होता है, उसका मूल्यांकन किया जा सकेगा । इस प्रकार डेरामैन के सिर में जिन उच्च एवं परिष्कृत तकनीकियों का समावेश हुआ है उससे आने वाली 21 वीं सदी में जोखिमों से भरे पर्यावरण में काम करने वाले लोगों के लिए एक सुरक्षित कल की बड़ी संभावना बनती है ।

2. फलों के संरक्षण में एक नया प्रयोग :

आमतौर पर फलों के संरक्षण में प्रशीतन यानी रेफ्रीजरेशन तकनीक का प्रयोग हो रहा है । लेकिन यह थोड़े समय के लिए प्रभावी रहता है । इसलिए कुछ दिनों के बाद ही फलों के प्राकृतिक स्वाद तथा महक में कमी होती चली जाती है । इसका सबसे प्रमुख कारण है रेफ्रीजरेशन तकनीकों की कम आर्द्रता यानी ह्यूमीडिटी। इसलिए फलों को आम रेफ्रीजरेटरों के स्थान पर वेयर हाउस रेफ्रीजरेटरों में भी रखा जाता है जहां पर आर्द्रता को 80 से 90 प्रतिशत तक नियंत्रित करते हैं । जापान की नेशनल इन्स्टिट्यूट ऑफ फ्रूट ट्री साइंस ने वैज्ञानिक शोधों से यह स्थापित किया कि इष्टतम आर्द्रता 95 होनी चाहिए । इसके साथ ही यह भी पाया गया कि आर्द्रता बढ़ाने से फलों में फफूंद लगने को बढ़ावा मिलता है । इनको देखते हुए जापान की मित्सुबिशी इलेक्ट्रिक कंपनी ने एक ऐसी विधि विकसित की है जिससे फंगस तथा बैक्टीरिया का नाश होता है ।

इस विधि में स्टरलाइजेशन के दो पूर्ण रूप से परखे सिद्धांतों का उपयोग किया गया है । पहला है ओज़ोन जो बैक्टीरिया का नाश करता है लेकिन अधिक मात्रा में प्रयुक्त होने पर खाद्य पदार्थों को संदूषित भी करता है । दूसरा है ऋणात्मक वायु आयन जो पूर्ण रूप से सुरक्षित है और कुछ बैक्टीरियाओं की ब्रीडिंग को भी कम करता है ।

शोध कर्ताओं ने इन दोनों सिद्धांतों का एक सही सम्मिलन किया है जिसमें ओजोन की मात्रा को 30 पी. पी. बी. यानी 300 करोड़वां भाग तथा ऋणात्मक वायु आयनों का घनत्व पचास हजार प्रति घन सेंटीमीटर रखा । यह मिश्रण बैक्टीरियाओं को खत्म करने में दस गुना अधिक प्रभावी पाया गया । इस कार्य के लिए मित्सुबिशी ने एक विद्युत यंत्र तैयार किया है जिसमें अत्यंत नियंत्रित रूप में ऋणात्मक आयन तथा ओजोन बनायी जा सकती है । इस मिश्रण को फल संरक्षण में प्रयुक्त किये जाने से प्रशीतित चैरी तथा आड़ू का जीवन काल एक हफ्ते से एक महीना, नाशपती का दो हफ्ते के बजाय पाँच महीना, अंगूर का तीन हफ्ते के बजाय चार महीना, संतरों का छः हफ्ते के स्थान पर पाँच महीना हो गया ।

इस तकनीक ने फल संरक्षण में प्रयुक्त परिरक्षक पदार्थ (प्रिजरवेटिव) की आवश्यकता को खत्म करके एक क्रांति पैदा कर दी है ।

3. आण्विक मिसाइल द्वारा प्रॉस्टेट कैंसर का इलाज :

हाल में प्रकाशित ब्रिटिश समीक्षा पत्रिका में यह बताया गया कि प्रॉस्टेट कैंसर की शुरुआती अवस्था में प्रॉस्टेट ग्रंथि में एक सुई की मदद से रेडियो एक्टिव परत स्थापित कर देने से इस रोग को दबाया जा सकता है । यह रेडियो-एक्टिव परत एक आण्विक मिसाइल के तौर पर कार्य करती है अर्थात निश्चित अवधि के अंतराल पर स्वतः विकिरण का प्रहार करती है । इस आण्विक मिसाइल को प्रॉस्टेट ग्रंथि में स्थापित करने में केवल एक घंटा लगता है । इसे ब्रिटेन में अभी तक लगभग 200 लोगों पर आजमाया जा चुका है जिसमें लगभग 90 प्रतिशत सफलता मिली है । अमेरशम इंटरनेशनल कंपनी इस विधि को बढ़ावा देने में इच्छुक है । इसमें कैंसर की शुरुआत में ही आयोडीन - 125 की एक मिसाइल को, जिसका साइज़ चावल के एक दाने से भी छोटा होता है, एक सुई द्वारा ग्रंथि में डाल देते हैं । स्थापित होने के बाद यह दो महीनों की निश्चित अवधि में ट्यूमर पर सीधे दो-तीन बार प्रहार करता है । माना जाता है कि इस विधि के द्वारा मरीजों को शल्य चिकित्सा जैसी पीड़ादायक और अधिक समय लेने वाली प्रक्रिया से छुटकारा मिल सकता है ।

4. खोपड़ी की प्राकृतिक मरम्मत :

किसी दुर्घटना के कारण सिर पर चोट लगने से खोपड़ी यानी स्कल पर हुए क्रैक अथवा होल को ठीक करने के लिए प्रचलित आपरेशन में टाइटेनियम प्लेट के ढांचे को पेंचों से अथवा सिलाई के माध्यम से वहां पर लगा दिया जाता है । लेकिन इससे इन्फैक्शन होने का डर रहता है तथा धातु की प्लेट होने से ब्रेन स्कैनिंग में भी बाधा आती है । इसके अलावा कभी-कभी एक्रेलिक बोन सीमेंट भी प्रयुक्त किया जाता है । परंतु इसको ढालने में दिक्कतें आती हैं और यह भंगुर भी होता है । न्यू साइंटिस्ट पत्रिका में हाल में प्रकाशित एक जानकारी के अनुसार ताइपी स्थित नेशनल ताइवान विश्वविद्यालय के प्रोफेसर फेंग-हुई-लिन ने एक ऐसा कंपोजिट पदार्थ तैयार किया है जो गुणों में लगभग प्राकृतिक है और हड्डियों की जीवित कोशिकाओं का स्थान ले सकता है । डॉ. लिन का कहना है कि "सर्वोत्तम पदार्थ तो अपने शरीर से ही मिलता है।" डॉ. लिन ने जिलेटिन में मिलाकर ट्राई कैल्सियम फॉस्फेट के ग्रेन्यूलों द्वारा एक नया कंपोजिट तैयार किया है । उल्लेखनीय है कि ट्राई कैल्सियम फॉस्फेट एक घुलनशील पदार्थ है तथा प्राकृतिक हड्डी में निहित कैल्सियम एवं फॉस्फेट आयन जैसे जैव पदार्थों के मुआफिक होता है ।

डॉ. लिन ने इसका परीक्षण खरगोश कि खोपड़ियों पर किया तथा उन्हें इसके वांछित परिणाम मिले जो काफी उत्साहजनक थे । यह पदार्थ धीरे-धीरे प्राणी के शरीर में अवशोषित हो गया तथा प्राकृतिक रुप धारण कर लिया । अब इस कंपोजिट के व्यापक प्रयोग की बड़ी संभावना हो गयी है ।

5. कार्बन नैनोट्यूब ट्रांजिस्टर

जैसा कि हम जानते हैं कि ट्रांजिस्टर एक ठोस अवस्थीय यानी सॉलिड स्टेट युक्ति होती है जिसकी खोज की पचासवीं वर्षगांठ पिछले वर्ष मनाई गयी । वास्तव में इसका आविष्कार 1948 में अमरीका की बेल प्रयोगशाला में जॉन [illegible], वाल्टर ब्रिट्टेन तथा विलियम शॉक्ले ने मिलकर किया था । जब रेडियो जैसे इलेक्ट्रॉनिक यंत्रों में वैक्यूम ट्यूब के स्थान पर सॉलिड स्टेट ट्रांजिस्टरों का प्रयोग शुरू हुआ तो ऐसा लगता था कि मानो हमने यंत्र काफी छोटा, कम खर्चीला तथा मजबूत बना डाला है । यह एक रोचक बात है कि पिछले 30 वर्षों में ट्रांजिस्टर का साइज प्रति दो वर्षों में आधा होता गया । इस समय इसका आकार एक सेंटीमीटर के हजारवें भाग से भी छोटा हो गया है । यदि इसी गति से भी चलें तो यह आशा बनती है कि 2010 तक इसका आकार नैनोमीटर अर्थात एक सेंटीमीटर के करोड़वें भाग के बराबर हो जायेगा । यह वह स्केल होता है जिस पर क्वांटम प्रभाव प्रदर्शित होने लगते हैं जो एक दम नवीन भौतिकी को जन्म देंगे । वैज्ञानिक इस दिशा में प्रयत्नशील हैं । एक प्रतिष्ठित अमरीकी पत्रिका 'फिजिक्स टुडे' में यह बताया गया है कि नीदरलैंड के डेल्फट विश्वविद्यालय

के शोध कर्ताओं ने एक कार्बन नैनोट्यूब ट्रांजिस्टर बनाने में सफलता हासिल की है। यह सामान्य ताप पर कार्य कर सकने वाली कार्बन पर आधारित इलेक्ट्रॉनिकी का एक ऐसा प्रदर्शन है जिसमें आण्विक पैमाने का उपयोग हुआ है। इस उपकरण में एक सेमीकंडक्टिंग कार्बन नैनोट्यूब, सिलिकन डाई ऑक्साईड (SiO_2) परत वाले सिलिकन के ऊपर दो प्लैटिनम के इलेक्ट्रोडों को जोड़ता है। इन प्लैटिनम इलेक्ट्रोडों के बीच की दूरी चार सौ नैनोमीटर रहती है। सिलिकन पर एक गेट इलेक्ट्रोड के माध्यम से विद्युत क्षेत्र लगाने पर नैनोट्यूब में धारा प्रवाह नियंत्रित होने लगता है। हालांकि कार्बन नैनोट्यूब काफी मजबूत ओर टिकाऊ होते हैं। लेकिन उनके बनाने में अभी कुछ दिक्कतें आ रही हैं। शोध कर्ताओं को पूर्ण विश्वास है कि वे इन कठिनाइयों पर विजय पाकर आने वाले समय में मॉलीक्यूलर सेल्फ एसेंबली तकनीक से इन ट्रांजिस्ट्रों को सर्किट में प्रयुक्त कर सकेंगे। कल्पना कीजिए कि जब आज के माइक्रो-इलेक्ट्रॉनिकी में वैज्ञानिकों ने लाखों घटकों को एक छोटी सी चिप में समाहित कर संपूर्ण कंप्यूटर जगत की काया ही बदल दी है तो नैनो इलेक्ट्रॉनिकी के आ जाने से कैसा विश्व बनेगा। वह हमें किस नवीन परिदृश्य को दिखलायेगा इसे हम भविष्य पर छोड़ देते हैं।

6. चिप पर नहीं, गोले पर कंप्यूटर प्रोसेसर :

यह तो सर्व विदित है कि वर्तमान माइक्रो-इलेक्ट्रॉनिकी सिलिकन की छोटी सी वेफर अथवा चिप के ऊपर बनी होती है। कृपया चौंकिए नहीं यदि यह कहा जाय कि भविष्य में चिप के स्थान सिलिकन के सूक्ष्म गोले ले लें। एकदम ताजी एवं नवीन तकनीकी विकास से संबंधित रिपोर्ट के आधार पर एक अमरीकी कंपनी जिसका नाम है बॉल सेमीकंडक्टर इन्कॉरपोरेटेड यानी, BIS संपूर्ण माइक्रोइलेक्ट्रॉनिकी के घटकों को सिलिकन के गोले के ऊपर बनाने में सफलता के काफी करीब पहुंच चुकी है। इस कंपनी के वाईस-प्रेसीडेंट डॉ. राम रामामूर्ति का दावा है कि वे इस लक्ष्य का शीघ्र ही प्राप्त कर लेंगे क्योंकि इसमें सिलिकन प्रोसेसिंग संबंधित लगभग सभी प्रचलित तकनीकों का उपयोग हो सकेगा। सर्व प्रचलित फोटो लीथोग्राफी के एक मिलीमीटर व्यास के सिलिकन गोले के ऊपर डायोड तथा अन्य घटक बना लिये गये हैं और अब इस प्रक्रिया को तीव्र कर उत्पादन स्केल पर ले जाने पर कार्य चल रहा है। चूंकि सिलिकन वेफर पर माइक्रोसर्किट बनाने की प्रक्रिया काफी धीमी है तथा उसके लिए विशाल क्लीन रूम लेबोरटरी की भी आवश्यक्ता पड़ती है अतः यह तकनीक काफी महंगी साबित हो रही है। नयी तकनीक में क्लीन रूम के स्थान पर प्रोसेसिंग का कार्य एकदम लीक टाईट 2 मिलीमीटर चौड़ी क्वार्ज ट्यूब के अंदर किया जायेगा। बी. आई. एस. कंपनी ने अभी 520 लाख डॉलर का निवेश किया है और उम्मीद है कि लगभग 1000 डॉलर में अच्छी उत्पादन लाईन स्थापित कर देंगे। उल्लेखनीय है कि यह लागत चिप तकनीक के दसवें भाग के बराबर है। शीघ्र ही चिप के स्थान पर गोले पर कंप्यूटर प्रोसेसर उपलब्ध होने लगेंगे।

7. वजन के माप का नया आधार बना :

यह तो हम सभी जानते हैं कि एक किलोग्राम का अधिकृत प्रामाणिक वजन यानी 'चेट' पेरिस के पास सेवेरस में सुरक्षित रखा गया है। अभी हाल में ब्रिटेन में विद्युत चुबंकीय बैलेंस पर आधारित एक किलोग्राम वजन का नये प्रामाणिक माप का आविष्कार किया गया है जिसे अमरीका की 'निस्ट' यानी नेशनल इंस्टिट्यूट ऑफ स्टैंडर्डस एण्ड टेक्नौलॉजी द्वारा अभी हाल में प्रदर्शित किया गया। यह मानना है कि इसके आ जाने से अभी तक प्रयुक्त सेवरस में रखा प्रामाणिक वजन बेकार हो जायेगा। पिछले एक दशक में प्लैटिनम - इरीडियम की ईंट में परिवर्तन पाये गये इसलिए निस्ट, टेडिंगटन स्थित नेशनल फिजिकल लेबोरेटरी और स्विस ग्रुप के साथ मिलकर एक विश्वसनीय इलेक्ट्रॉनिक माप जल्दी से जल्दी तैयार करने में लगा है। प्रयोग किये जा रहे 'वाल बैलेंस युक्ति' में एक तीन मीटर ऊंची विद्युत चुंबक है जिसके शीर्ष पर एक स्केल लगा है। इस

बैलेंस के दोनों ओर धातु की कुंडली (Coil) से जुड़े एक एक पलड़े हैं। इसके एक पलड़े पर एक प्रामाणिक वजन रखा जाता है और इलेक्ट्रोमैगनेट को पॉवर दी जाती है जिससे उसकी धातु कुंडली में विद्युत धारा प्रवाहित होने लगती है जो वजन के विरुद्ध एक बल पैदा करती है। धारा को नियंत्रित कर वजन को बैलेंस किया जाता है। और वजन समतुल्य धारा का मान ज्ञात कर लिया जाता है। फिर वजन को हटाकर एवं कुंडली में धारा बंद करके, केवल कुंडली को चुंबकीय क्षेत्र में इस गति से चलाते हैं कि उसमें इतनी धारा प्रवाहित होने लगे कि वह पहले के बराबर हो जाय। इन प्रयोगों तथा कुछ सैद्धांतिक गणनाओं के आधार पर नया विद्युत किलोग्राम तैयार किया जा रहा है।

8. रिमोट नियंत्रण में इन्फ्रारेड का प्रयोग :

टीवी और वीसीआर को रिमोट द्वारा चालू करना, और चैनल बदलना आज कितना आसान, आरामदायक तथा कभी-कभी मनोरंजक भी बन गया है। यही नहीं अपनी कार में बैठे -बैठे, अपने गैरेज के शटर को उठा देना कोई आश्चर्यजनक कार्य नहीं लगता। क्या आप जानते हैं कि इन कार्यों के लिए प्रयुक्त रिमोट में इन्फ्रारेड जैसे अदृश्य विकिरणों का उपयोग होता है। समय की मांग को देखते हुए तथा आज के कॉम्प्लेक्स कंप्यूटर युग में केबल कनेक्शनों को रिमोट कनेक्शनों यानी बेतार संबंधों में बदलने की दिशा में वैज्ञानिक काफी समय से जुटे हैं। हालांकि इस कार्य के लिए दो तकनीकों पर काम चल रहा है। ये हैं इन्फ्रारेड तथा रेडियो फ्रिक्वैंसी तकनीकें। वर्तमान में इन्फ्रारेड के उपयोग को सस्ते, विश्वसनीय तथा सरल होने के कारण अधिक मान्यता मिली है। इसके लिए आवश्यक मानक भी तैयार हो गये हैं। "दि इन्डस्ट्रियल फिजिसिस्ट" नामक पत्रिका के हाल के अंक में यह जानकारी दी गयी है कि वालनट क्रिक, कैलीफोर्निया स्थित 'इन्फ्रारेड डाटा ऐसोसिएशन' के पास 160 सदस्य हैं जो इन्फ्रारेड पर आधारित सॉफ्टवेयर तथा हार्डवेयर के उन मानकों को तैयार करने में जुटे हुए हैं जिनसे यह डाटा ट्रांस्फर का एक युनिवर्सल तरीका बन जाय। यह एसोसिएशन न केवल कंप्यूटरों, लोकल एरिया नेटवर्कों के लिए मानक बना रही है बल्कि इसका उद्देश्य डिजिटल टेलीफोन, डिजिटल कैमरा टीवी सेट टॉप बॉक्स, इलेक्ट्रॉनिक खेल, घरेलू उपयोग के यंत्र इत्यादि को भी बेतार संबंधों की श्रेणी में लाना है। सबसे ताजा कार्य द्वि-दिशीय यानी 'बाईडाइरेक्शनल कंमाड' नियंत्रण पर केंद्रित है। इन्फ्रारेड डाटा एसोसिएशन द्वारा तैयार नियंत्रण का सबसे पहला उपयोग मल्टीमीडिया पर्सनल कंप्यूटरों और टू वे टीवी सेट टॉप बॉक्सेस में होने वाला है जिससे घरेलू टीवी एक इन्टर एक्टिव टीवी बनकर वर्ल्ड वाइड वेब से जुड़ सके, लगभग आठ इन-पुट डिवाइसेस से दो और उससे अधिक मशीनों को एक साथ संपर्क कर सके। यह उल्लेखनीय है कि एक उच्चगति ट्रांसमीटर-रिसीवर यूनिट में एक इन्फ्रारेड लाइट एमिटिंग डायोड, एक फोटो डायोड तथा एंपलीफायर आई. सी. होते हैं।

9. पृथ्वी लगातार कंपन करती है :

भूचाल से जो जान माल की हानि होती है उसके बारे में सोचते ही शरीर में कंपकंपी छा जाती है। वैज्ञानिकों का मानना है कि बिन भूचाल के भी पृथ्वी लगातार कंपन करती रहती है। उसकी तीव्रता काफी कम रहती है। कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय तथा टोक्यो इन्सटिट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी के वैज्ञानिकों ने 1983 एवं 1994 के बीच एकत्र किये गये ग्रेवीमीटर आंकड़ों का विश्लेषण किया और जिसके परिणामों की जानकारी 1998 में प्रकाशित जियोफिजिक्स रिसर्च लेटर के हाल के अंक में दी गयी है। उनके अनुसार वर्ष में 61 दिन ऐसे थे जिनमें कोई भी भूकंपनीय घटना नहीं घटी। इन दिनों उन्होंने पृथ्वी की अपनी प्राकृतिक कंपन मोड का पता लगाया और पाया कि इनकी आवृति 2 से 7 मिलीहर्त्स की परास में होती है। इससे पदार्थों में उत्पन्न त्वरण लगभग नैनोगाल यानी नैनो सेंटीमीटर प्रतिवर्ग सेकंड के बराबर होता है। इसकी उत्पत्ति का कारण अभी भी एक रहस्य बना हुआ है। क्या यह कई छोटे

भूचालों का मिला-जुला प्रभाव है ? वैज्ञानिकों ने इससे इन्कार किया है । उनका मानना है कि यह शायद पर्यावरणीय प्रभावों का प्रतिफल है । लगता है यह 1 से 10 किलोमीटर के स्केल पर होने वाली वायु हलचल से संबंधित है । इस संकल्पना की पुष्टि के लिए वैज्ञानिक आज भी बड़े जोर-शोर से अपने काम में जुटे हैं ।

10. दिल के दौरे से संबंधित नयी जानकारी

सामान्यत: दिल का दौरा यानी हार्ट अटैक का नाम सुनते ही हर आदमी घबरा जाता है । इस बीमारी के बारे में बराबर शोध कार्य चल रहे हैं । एक ताजी रिसर्च के आधार पर यह पाया गया कि जो लोग फोलिक एसिड तथा विटामिन B - 6 का पर्याप्त सेवन नहीं करते उनमें दिल का दौरा पड़ने के खतरे अधिक देखे गये । यह एक अमरीकी डॉ. किल्लिएन रॉबिन्सन ने लगभग 1500 लोगों पर किये शोध के बाद बताया । फॉलिक एसिड तथा विटामिन B - 6 खून में होमोसिस्टीन का स्तर घटाते हैं । होमोसिस्टीन एक अमीनो एसिड होता है जो हृदय की धमनियों में वसायुक्त पदार्थ जमाने में सहायक होता है । खोज में यह देखा गया कि जिन लोगों में होमोसिस्टिन का स्तर अधिक था उनमें कम स्तर के अमीनो अम्ल वाले लोगों के मुकाबले, दिल के दौरे की संभावना दुगनी थी । यह जानकारी आवश्यक है कि फॉलिक एसिड हरी पत्तेदार सब्जियों, फलियों, सीरियल आदि में तथा विटामिन B-6 अनाज के दानों, मछली, आलू, मुर्गियों आदि में मिलता है । अभी प्रचलित खुराक के आधार पर पुरुषों तथा महिलाओं के लिए फॉलिक एसिड तथा विटामिन B-6 की मात्रा अलग अलग इस प्रकार बताई जाती है । पुरुषों के लिए विटामिन B-6 और फॉलिक एसिड की मात्रा क्रमश: दो मिलीग्राम प्रतिदिन एवं 200 माइक्रोग्राम प्रति दिन है जबकि महिलाओं के लिए यह 1.6 मिलीग्राम एवं 180 माइक्रोग्राम प्रतिदिन है । डॉ. रॉबिन्सन के अनुसार सर्वोत्तम खुराक में कम से कम 7 मिलीग्राम प्रतिदिन विटामिन-6 तथा 400 माइक्रोग्राम प्रति दिन फॉलिक अम्ल होना चाहिए ।

प्रस्तुति : **गोविंद प्रसाद कोठियाल**
तकनीकी भौतिकी एवं प्रारुप इंजी. प्रभाग
भा. प. अ. केंद्र, मुंबई - 400 085

11. बिजली के स्पर्श से रंग बदलने वाली इलेक्ट्रॉनिक स्याही विकसित

अमरीका के मैसेच्यूसेट्स तकनीकी संस्थान के वैज्ञानिकों ने एक ऐसी स्याही का विकास किया है जो बिजली के झटके से रंग बदल देती है और उसी रंग में तब तक बनी रहती है जब तक दोबारा इसमें बिजली का झटका नहीं दिया जाता । इस स्याही को सूक्ष्मातिसूक्ष्म नलियों में सफेद कणों तथा रंगों को भरकर बनाया जाता है जिसमें बिजली का झटका देने से सफेद कण हिलते हैं और रंग सफेद से काले में बदल जाता है तथा काले से सफेद में । इस स्याही से किसी प्रकार के कागज या प्लास्टिक के अन्य किसी धातु से बनी पट्टी पर छपाई की जा सकती है और यह सस्ती भी बहुत होती है । इसका अर्थ यह है कि इस स्याही का लैप कंप्यूटर या टेलीविजन के पर्दे और आप फिर मनचाहे रंग में अपनी पुस्तक पढ़ सकते हैं या स्क्रीन का रंग बदल कर टेलीविजन या कंप्यूटर देख सकते हैं ।

प्रस्तुति : **सलाहुद्दीन अहमद**
रेडियो रसानिकी प्रभाग, भा. प. अ. केंद्र
मुंबई - 400 085

❐❐❐

1. चंद्रमा की गुरुत्वाकर्षण शक्ति

ब्रह्मांड के सभी तारे एवं ग्रह एक दूसरे को अपनी तरफ आकर्षित करते हैं। इस आकर्षण शक्ति को गुरुत्वाकर्षण शक्ति कहते हैं। जब कोई वस्तु हम आकाश की तरफ फेंकते हैं तो वह वस्तु वापस लौटकर पृथ्वी की तरफ ही आ जाती है। ऐसा पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति के कारण ही होता है। गुरुत्वाकर्षण शक्ति एक अदृश्य शक्ति होती है।

1687 में महान भौतिक विज्ञानी सर आइजेक न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत को प्रतिपादित किया था। न्यूटन के अनुसार - दो वस्तुओं के बीच की गुरुत्वाकर्षण शक्ति मुख्य रूप से दो बातों पर निर्भर होती है। वस्तु का द्रव्यमान एवं आपस की दूरी। ज्यादा द्रव्यमान वाली वस्तु की आकर्षण शक्ति ज्यादा होगी। परंतु यदि दोनों के बीच की दूरी बढ़ा दी जाय तो गुरुत्वाकर्षण शक्ति कम हो जायेगी। इस प्रकार यदि दो वस्तुओं की दूरी दुगनी कर दी जाय तो आकर्षण शक्ति एक चौथाई हो जायेगी।

ब्रह्मांड के तारे एवं ग्रहों में अपनी गुरुत्वाकर्षण शक्ति होती है। अंतरिक्ष के बादल गैस एवं धूल कणों से भरे होते हैं। खगोलविज्ञानियों की ऐसी अवधारणा है कि इसी गुरुत्वाकर्षण शक्ति के कारण ही ग्रहों पर ठोस धरातल का निर्माण होता है। यह शक्ति अंतरिक्ष के बादलों में स्थित गैस एवं धूल के कणों को अपनी तरफ आकर्षित कर लेती है। धीरे - धीरे यह धूल एवं गैस के कण एक परत के रूप में जमा होने लगते हैं। सैकड़ों वर्षों की इस प्रक्रिया के बाद ग्रहों पर ठोस धरातल का निर्माण होने लगता है।

चंद्रमा पृथ्वी का एकमात्र उपग्रह है। पृथ्वी चंद्रमा से 81 गुना बड़ी है। चंद्रमा का व्यास पृथ्वी के व्यास का एक चौथाई है। चंद्रमा की गुरुत्वाकर्षण शक्ति पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति का 1/6 भाग ही है। इस कारण यदि कोई व्यक्ति पृथ्वी पर जितनी शक्ति लगाकर एक मीटर कूदेगा उतनी ही शक्ति लगाकर वह चंद्रमा पर 6 मीटर कूद सकता है। इसी तरह कोई वस्तु चंद्रमा के धरातल पर से उसकी तरफ फेंकी जाये तो वह वस्तु पृथ्वी पर से फेंकी गयी वस्तु से 6 गुना ज्यादा ऊंचाई तक जायेगी। कमजोर गुरुत्वाकर्षण शक्ति के कारण चंद्रमा का अपना वायुमंडल नहीं है। इसलिए हवा के अणु इसकी तरफ आकर्षित नहीं होते या रुकते नहीं है। चंद्रमा की गुरुत्वाकर्षण शक्ति हमारी पृथ्वी को भी प्रभावित करती है। इस कारण समुद्रों में प्रत्येक दिन ज्वार भाटा आता है। पूर्णिमा एवं अमावस्या के दिन जब सूर्य एवं चंद्रमा एक सीधी रेखा में आते हैं तो उस दिन गुरुत्वाकर्षण शक्ति ज्यादा होती है जिससे इन दिनों समुद्र में ज्वार ऊंचा आता है और पानी का जलस्तर काफी ऊपर उठ जाता है।

2. दूसरे सौरमंडल का जन्म

एक लंबे समय से खगोलशास्त्रियों की यह अवधारणा रही है कि आकाशगंगा में सूर्य के सौरमंडल के अलावा भी कोई दूसरा सौरमंडल जन्म ले रहा है। समय-समय पर रेडियो टेलीस्कोपों से कुछ संकेत मिलते रहे हैं। आखिर 16 मार्च, 1998 को यह अवधारणा साकार हो गयी। खगोलशास्त्रियों ने पृथ्वी से 220 प्रकाशवर्ष दूर एक नये नक्षत्र की खोज की है। खगोलशास्त्रियों ने इसका नाम दिया है एच. आर. 4796। यह नया नक्षत्र अभी बाल्यावस्था में है। अभी इसके ग्रह जन्म ले रहे हैं। 16 मार्च 1998 को अस्तित्व में आये इस नक्षत्र की खोज अमरीकी अंतरिक्ष अनुसंधान केंद्र नासा के खगोल विज्ञानियों ने जेट प्रोपल्शन प्रयोगशाला की दूरबीन केक-11 से की।

खगोलशास्त्रियों ने पृथ्वी के क्रमिक निर्माण की प्रकिया का विस्तृत एवं प्रामाणिक अध्ययन किया है। इससे दूसरे ग्रहों के निर्माण की प्रक्रिया को समझने में काफी आसानी होती है। लगभग दस मिलियन वर्ष में कोई ग्रह अस्तित्व में आता है। ऐसा माना जाता है कि किसी ग्रह का निर्माण अंतरिक्ष में बादलों के केंद्र में स्थित गैस एवं धूल के कणों से

होता है। इस प्रक्रिया में लगभग सौ मिलियन वर्ष लगते हैं। जब ग्रहों की निर्माण प्रक्रिया शुरु होती है तो धीरे-धीरे उसमें गुरुत्वाकर्षण शक्ति आने लगती है। यही गुरुत्वाकर्षण शक्ति उस ग्रह के पास स्थित धूल एवं गैस के कणों को अपनी तरफ आकर्षित करने लगती है। धीरे-धीरे यह एक परत के रूप में जम जाती है। सभी ग्रहों की निर्माण प्रक्रिया लगभग एक सी होती है।

एच. आर. 4796 की उम्र भी दस मिलियन वर्ष आंकी गयी है। इसका आकार तश्तरीनुमा है। इसके चारों ओर गर्म गैस एवं धूल के कण हैं। बीच में एक छेद दिखायी दे रहा है। ऐसा माना जा रहा है कि इस तश्तरी के आकार में बर्फ, पानी, लोहा, ग्रेफाइट, सिलिकेट आदि के कण हैं। खगोलशास्त्रियों के अनुसार एच. आर. 4796 अभी एक गैसीय ग्रह की स्थिति में है। इसकी अगली प्रक्रिया में वे गैसें एवं धूल के कण गायब हो जायेंगे जो इसके द्वारा अवशोषित नहीं हो सकेंगे। लगभग सौ मिलियन वर्ष पूरा होने पर ही वहां पृथ्वी जैसा कोई ग्रह आकार ले सकेगा। उसके बाद ही जीवन के अस्तित्व की आशा की जा सकती है।

खगोलशास्त्रियों की अवधारणा है कि बिना ग्रह के सौरमंडल आकार नहीं ले सकता। एच. आर. 4796 की निर्माण प्रक्रिया से इस बात के स्पष्ट संकेत मिले हैं कि इसका भी अपना सौर परिवार होगा जो अभी आकार ले रहा है। खगोलशास्त्रियों का अनुभव है कि एच. आर. 4796 सौरमंडलीय स्वरूप लगभग वैसा ही होगा जैसा पृथ्वी एवं अन्य ग्रहों का 4.5 मिलियन वर्ष पहले था।

एच. आर. 4796 की खोज से खगोलशास्त्री भविष्य में इसकी निर्माण प्रक्रिया के अध्ययन के संबंध में काफी आशान्वित हैं। दरअसल इसके संबंध में अभी जो जानकारी है वह प्रारंभिक है। खगोल विज्ञानियों के पास इसका अध्ययन करने के लिए साधन सीमित हैं। ऐसी आशा की जा रही है कि 21 वीं शताब्दी में ऐसे नये टेलीस्कोप एवं अन्य उपकरणों का निर्माण हो जायेगा जो नये ग्रहों की निर्माण प्रक्रिया का लगातार अध्ययन करने में सहायक होंगे।

शैलेंद्र कुमार मिश्र, प्रवक्ता,
द्वारा ज्ञान - भारती, ग्राम व पोस्ट, मझौंवा, बलिया - 277 403

3. मानव नेत्र कार्य कैसे करता है ?

मानव नेत्र एक प्राकृतिक प्रकाशिक यंत्र है जिसके द्वारा हम बाह्य जगत को प्रकाश की उपस्थिति में देख सकते हैं। निम्नतम वर्गों के प्राणियों के नेत्र वस्तुतः अनेक रंजित कोशिकाओं के समूहों द्वारा निर्मित होते हैं और यही कारण है कि निम्न स्तर के प्राणी केवल प्रकाश और अंधकार में ही विभेद कर पाते हैं। पर उच्च स्तर के प्राणियों के नेत्र अत्यधिक विकसित होते हैं, जिनके द्वारा वे केवल वस्तु के आकार एवं स्थिति ही नहीं बल्कि उसके वास्तविक रंगों को भी देख सकते हैं। जहाँ तक मानव नेत्र का सवाल है यह तो और भी विकसित होते हैं।

मानव नेत्र लगभग गोलाकार होता है जो खोपड़ी की हड्डियों से बने नेत्र के कोटर में स्थित होता है जिसे मांसपेशियों की सहायता से इधर-उधर घुमाया जा सकता है। मानव नेत्र की कार्यविधि को समझने से पहले इसकी रचना पर थोड़ा ध्यान देना आवश्यक है।

दृढ़ पटल - आँख के गोले के ऊपरी मोटे आवरण को श्वेत पटल या दृढ़ पटल कहते हैं। यह तंतुमय संयोजी ऊतकों (Fibrous Connective tissues) का बना होता है।

कॉर्निया - नेत्र का वह भाग जो बाहर से दिखायी पड़ता है कॉर्निया कहलाता है। प्रकाश की किरणें इसी भाग से होकर आँख के अंदर जाती हैं।

रक्तक (Choroid) - दृढ़ पटल से चिपके हुए गहरे भूरे रंग की झिल्ली रक्तक पटल कहलाती है। रक्त के अपने गहरे रंग के कारण यह आँख के प्रकाश को अवशोषित कर लेता है। इसके द्वारा किसी प्रकार का आंतरिक परावर्तन

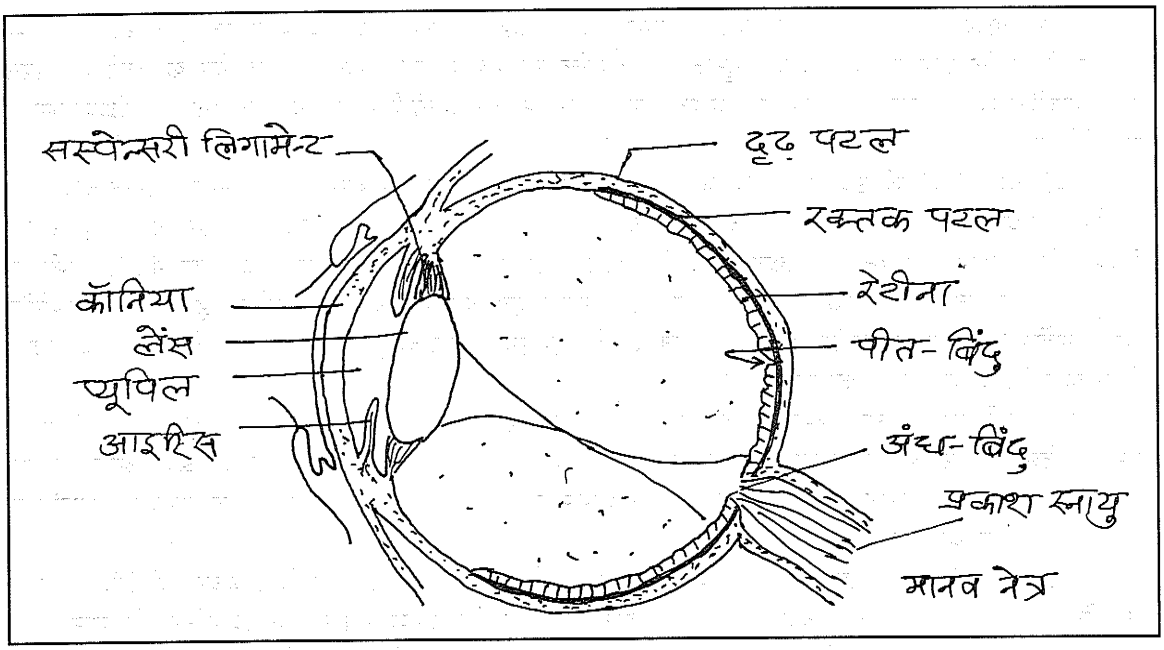

संभव नहीं होता है।

कॉर्निया के पीछे एक पर्दा दिखाई देता है, जिसे परितारिका या आइरिस कहते हैं। आइरिस एक अपारदर्शी डायफ्राम का कार्य करता है। जिसके अभिमुख को तारा या पुतली कहा जाता है। आइरिस से लगी हुई विभिन्न पेशियों के सिकुड़ने व फैलने से पुतली घट-बढ़ सकती है। इस प्रकार प्रकाश की निश्चित मात्रा ही गोलक में प्रवेश कर पाती है।

आइरिस के भीतर की ओर कोरॉइड का कुछ भाग मोटा होकर सीलियरी बॉडी बनता है जो कि पेशीयुक्त होती है। सीलियरी बॉडी के भीतरी स्तर पर बहुत से फोल्डस् पाये जाते हैं जिन्हें सीलियरी प्रवर्ध (Ciliary Processes) कहते हैं। सीलियरी बॉडी की पेशियों से ही लेंस के लिगामेन्टस् लगे रहते हैं। ये लिगामेन्ट ही सस्पेन्सरी लिगामेन्ट कहलाते हैं।

नेत्र लेंस - नेत्र लेंस द्वि-उत्तल होता है जिसका बाहर वाला तल अधिक वक्रता-त्रिज्या तथा अदंर वाला तल कम वक्रता-त्रिज्या वाला होता है। मांसपेशियों की सहायता से लेंस को थोड़ा सा मोटा या पतला करके नेत्र लेंस की फोकस दूरी में अल्प परिर्वतन किया जा सकता है।

दृष्टि पटल (Retina) - नेत्र गोलक का भीतरी स्तर रेटीना कहलाता है। यह भाग अर्धपारदर्शी परंतु अत्यधिक सुग्राही होता है तथा स्नायु रेशों तथा रक्त कोशिकाओं का बना होता है। रेटीना में दृष्टि शंकु (कोन्स) व छड़ें (रॉडस्) पाये जाते हैं। शंकुओं के द्वारा वस्तुओं के रंगों का भेद मालूम होता है तथा रॉड्स प्रकाश की तेजी अर्थात् अँधेरे और उजाले का भेद करती हैं। रेटिना की भीतरी सतह पर एक गोल पीला धब्बा होता है जिसे पीत बिंदु कहते हैं जिसके केंद्र में मध्य-गर्त (fovea centralis) नामक एक छोटा गड्ढ़ा होता है। यह रेटिना का सबसे अधिक सूक्ष्मग्राही भाग होता है। रेटिना के जिस स्थान पर प्रकाश स्नायु (optic nerves) प्रवेश करती हैं वह स्थान, अंध बिंदु कहलाता है। यह ऐसा इसलिए कहलाता है क्योंकि इस भाग पर पड़ने वाला प्रकाश किसी प्रकार का उद्दीपन उत्पन्न नहीं कर पाता है, परिणामस्वरूप यहाँ पर किसी वस्तु का अभिज्ञान नहीं हो पाता है।

आँख में प्रतिबिंब का बनना :

किसी वस्तु को साफ-साफ देखने के लिए यह आवश्यक है कि रेटिना पर उसका स्पष्ट प्रतिबिंब बने। किसी वस्तु से आने वाली प्रकाश की किरणें जब आँखों पर पड़ती हैं तब कॉर्निया एवं नेत्र लेंस से अपवर्तन के पश्चात रेटिना पर पहुंचती हैं जहाँ पर वस्तु का स्पष्ट प्रतिबिंब बनता है। वास्तव में रेटिना पर बना हुआ वस्तु का प्रतिबिंब उल्टा होता है, परंतु मस्तिष्क में यह प्रतिबिंब हमें सीधा दिखाई पड़ता है। यह साधारण अनुभव की बात है कि वस्तु दूर की हो या नजदीक की, हम उसे आखों की सहायता से साफ-साफ देख लेते हैं और यह तभी संभव है जबकि वस्तु की दूरी बदलने से लेंस से रेटिना की दूरी बदले या लेंस की फोकस दूरी में परिवर्तन हो जाये। परंतु वास्तव में लेंस से रेटिना की दूरी नहीं बदलती है बल्कि सिलियरी मांसपेशियों की उपस्थिति के कारण लेंस की वक्रता-त्रिज्या बदल जाती है जिससे फोकस-दूरी आवश्यकतानुसार बदल जाती है। यह परिवर्तन मांसपेशियों के तनाव के घटने-बढ़ने से होता है। नेत्र लेंस की इस प्रकार आवश्यकतानुसार अपनी फोकस-दूरी को परिवर्तित करके प्रतिबिंब को रेटिना पर बनाने की क्षमता को आँख की समंजन-क्षमता (Power of accommodation) कहा जाता है।

एकोमेडेशन क्रिया को इस प्रकार समझा जा सकता है। साधारण या विश्रामावस्था में सस्पेंसरी लिगामेन्टस् तने हुए रहते हैं जिससे लेंस सामने की ओर कुछ चपटा रहता है। इस दशा में लेंस की फोकस-दूरी दूर की चीजों को देखने के लिए ठीक होती है परंतु निकट की चीजों को देखने के लिए यह बेकार होती है। इसलिए जब निकट की चीजों को देखना होता है, तो इसकी फोकस-दूरी को बदलना अनिवार्य हो जाता है। ऐसा करने के लिए सिलियरी पेशियाँ सिकुड़ती जाती हैं जिससे सस्पेन्सरी लिगामेन्टस ढीले हो जाते हैं। और लेंस सामने की ओर कुछ बढ़कर थोड़ा सा उभर आता है। यह उभार लेंस के बीच में सबसे अधिक होता है। इस प्रकार लेंस के आकार तथा फोकस-दूरी को बदलकर निकट की वस्तुएँ भी साफ देखी जा सकती हैं।

सामान्य आँख 25 सेंमी. से लेकर अनंत तक की दूरी पर स्थित वस्तु को देख सकती है। आँख के समक्ष जब कोई प्रकाशित वस्तु प्रकट होती है तब रेटीना पर इसका वास्तविक एवं उल्टा प्रतिबिंब बनता है तब रेटिना में स्थित कोन्स एवं रॉड्स, प्रकाशीय स्नायु तंतु द्वारा प्रतिबिंब से प्रकाशीय संवेदना को भी मस्तिष्क तक पहुंचाते हैं। तभी हमें दृष्टि की अनुभूति होती है। दृष्टि की इस प्रक्रिया के कारण वस्तु के प्रकट होने की और देखे जाने की क्रिया समकालिक नहीं हो पाती है। जिस क्षण कोई वस्तु हमारे सामने आती है उसके कुछ समय बाद ही हम उसे देख पाने में समर्थ होते हैं। इसी प्रकार वस्तु जिस क्षण हमारी आँख के सामने से हटती है उसके कुछ समय (लगभग 0.1 सें.) बाद ही हम उसे गायब होते हुए देखते हैं। वस्तु के गायब होने तथा गायब होते हुए दिखाई पड़ने की समय-पश्चता (Time Lag) को 'दृष्टि निबंध' कहते हैं। गायब होने की समय-पश्चता प्रकट होने की समय-पश्चता से अधिक होती है।

दृश्य अनुभूति का आभास, चाहे वह जितना क्षणिक हो, दृश्य के हटाने के बाद, करीब सेकंड के दसवें भाग तक आँख के रेटिना पर रहता है, इसलिए अगर एक सेकंड में दस से ज्यादा दृश्य आँख पर पड़ें तो आँख उनमें भेद नहीं कर पायेगी और आँख पर उसका लगातार प्रभाव पड़ेगा। यही वजह है कि अगर गत्ते के एक तरफ एक चिड़िया की तस्वीर हो और दूसरे तरफ एक पिंजरा हो, तो गत्ते को जल्दी-जल्दी घुमाने से दोनों प्रभाव एक दूसरे में घुल-मिल जायेंगे और दृष्टि-बिलंबना (Presistence of Vision) के कारण चिड़िया पिंजड़े में दिखलाई पड़ेगी।

कृषिचयन
एम. एस. सी. (भौतिक विज्ञान),
द्वारा डॉ. चतुर्भुज साहु, विभागाध्यक्ष, मानव विज्ञान विभाग,
गिरिडीह कॉलेज, गिरिडीह - 815 301

वार्षिक प्रतिवेदन (1997-98)

हिंदी-विज्ञान साहित्य परिषद

(भा. प. अ. केंद्र)

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद की कार्यकारिणी समिति की ओर से 1997-98 की गतिविधियों का ब्यौरा आपके सम्मुख प्रस्तुत करते हुए मुझे हार्दिक प्रसन्नता हो रही है।

"वैज्ञानिक" का प्रकाशन :

परिषद की प्रमुख गतिविधियों में त्रैमासिक पत्रिका "वैज्ञानिक" का प्रकाशन पूर्ववत हुआ। इस वर्ष हालांकि प्रकाशन में कुछ विलंब रहा फिर भी चारों अकों का प्रकाशन पूर्ण किया गया। प्रकाशन में चल रहे विलंब को कम करने के प्रयास में 1998 के पहले दोनों अंकों (जनवरी-जून 1998 : 30 (1/2)) को संयुक्त रुप में प्रकाशित किया गया। सभी अंकों में लेख, टिप्पणी, बालविज्ञान के साथ-साथ विज्ञान कविताएं, कथाएं इत्यादि का समावेश रहा। इस वर्ष के दो अंक अप्रैल-जून 1997 : 29 (2) तथा जनवरी-जून 1998 : 30 (1/2) प्रतियोगिता विशेषांक थे। प्रथम अंतरिक्ष उड़ान के चालीसवें वर्ष के उपलक्ष्य में अक्तूबर-दिसंबर अंक "अंतरिक्ष विज्ञान विशेषांक" के रुप में प्रकाशित किया गया। संपादकीय के माध्यम से "भारतीय भाषाओं में विज्ञान संगोष्ठियां किसके लिए ?," "इलेक्ट्रॉन की खोज के सौ वर्ष तथा ट्रांजिस्टर के पचास वर्ष," "अंतरिक्ष विज्ञान : कुछ महत्वपूर्ण पहलू" तथा "परमाणु संलयन ऊर्जा : 21 वीं सदी का लक्ष्य" जैसे विषयों पर प्रकाश डाला गया। इसके अलावा वर्ष 1997 में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित कार्य तथा विजेताओं से संबंधित लेख भी प्रकाशित किये गये। "वैज्ञानिक" के प्रकाशन की समग्रता को देखते हुए परिषद, विशेष रुप से डॉ. एम. आर. बालकृष्णन, अध्यक्ष, पुस्तकालय एवं सूचना सेवाएं प्रभाग, "वैज्ञानिक" के प्रमुख संपादक डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल एवं संपादन मंडल के उनके सहयोगियों सर्वश्री हरिओम मित्तल, डॉ. कैलाश चंद्र भल्ला, डॉ. राज नारायण पांडेय, श्री राम नाथ जिंदल तथा वैज्ञानिक के व्यवस्थापक मंडल के सभी सदस्यों की आभारी है।

"विज्ञान पत्रिका" का प्रकाशन :

गत पांच वर्षों से केंद्र के कर्मचारियों को भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र में चल रही वैज्ञानिक गतिविधियों एवं विज्ञान के अन्य विषयों से संबंधित जानकारी देने के लिए "विज्ञान पत्रिका" का प्रकाशन निरंतर किया जाता रहा। इस कार्य के लिए इस पत्रिका के मुख्य संपादक डॉ. ज्ञानेन्द्र प्रसाद तिवारी व श्री आलोक अवस्थी के प्रति परिषद धन्यवाद ज्ञापन करती है।

अखिल भारतीय होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता :

इस वर्ष इस प्रतियोगिता हेतु कुल 42 लेख प्राप्त हुए। इस प्रतियोगिता में कुल दस लेखों को पुरस्कृत किया गया एवं कुल 6500/- रु. की राशि पुरस्कार स्वरूप वितरित की गयी। लेख प्रतियोगिता के संयोजक श्री इंद्रकुमार शर्मा के प्रति परिषद अपना आभार प्रकट करती है।

वैज्ञानिक प्रश्नमंच :

हमारे प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरु के जन्मदिन के उपलक्ष्य में नौ वर्ष पूर्व परिषद ने बच्चों के लिए वैज्ञानिक प्रश्नमंच का आयोजन आरंभ किया था। इसी कड़ी में नौवें प्रश्नमंच का आयोजन जनवरी, 1998 में हुआ जिसमें अणुशक्तिनगर स्थित केंद्रीय विद्यालयों के बच्चों ने उत्साहपूर्वक भाग लिया। आयोजन में केंद्रीय विद्यालयों के प्राध्यापकों एवं अध्यापकों को आमंत्रित किया गया था। इस कार्यक्रम की अध्यक्षता, परिषद अध्यक्ष श्री अनिल कुमार आनंद ने की। केंद्र निदेशक श्री अनिल कुमार काकोडकर समारोह के प्रमुख अतिथि थे। मुख्य अतिथि ने अच्छे प्रदर्शन

के लिए बच्चों को बधाई दी एवं विजेताओं को पुरस्कार दिये । इस समारोह के सफल आयोजन के लिए परिषद डॉ. विजय कुमार मनचंदा एवं उनके सहयोगियों के प्रति आभारी है ।

राजभाषा वार्ताएं :

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद तथा राजभाषा कार्यान्वयन समिति के संयुक्त तत्वावधान में इस वर्ष दो वार्ताओं का आयोजन किया गया । "स्वास्थ्य एवं मनन विज्ञान" - इस विषय पर 19 फरवरी 1998 को रक्षा अनुसंधान प्रयोगशाला जोधपुर के निदेशक डॉ. राम गोपाल ने एक वार्ता दी । दूसरी वार्ता का विषय था "पोलोनियम एवं रेडियम का आविष्कार - शताब्दी वर्ष" । इसे भा. प. अ. केंद्र के भूतपूर्व वरिष्ठ वैज्ञानिक डॉ. एस. के. पाटिल ने अत्यंत रोचक ढंग से प्रस्तुत किया । श्रोताओं ने इन दोनों वार्ताओं की भूरिभूरि प्रशंसा की । वार्ताओं के आयोजन के लिए परिषद राजभाषा वार्ता संयोजक डॉ. राजेंद्र स्वरूप के प्रति अपना आभार प्रकट करती है ।

नोबेल पुरस्कार : किसे और क्यों - एक संगोष्ठी :

विज्ञान के क्षेत्र में दिये जाने वाले श्रेष्ठतम पुरस्कार "नोबेल पुरस्कार" विजेता वैज्ञानिक तथा उनके कार्यों के बारे में जानकारी देने के उद्देश्य से हिंदी विज्ञान परिषद पिछले कुछ वर्षों से एक अर्धदिवसीय संगोष्ठी का आयोजन करती आ रही है । इस वर्ष 1997 के भौतिकी, रासायनिकी एवं चिकित्सा विज्ञान के नोबेल पुरस्कार विजेता वैज्ञानिकों के कार्यों पर प्रकाश डालने हेतु 11 मार्च 1998 को इस कड़ी की सातवीं संगोष्ठी का आयोजन किया गया । इस समारोह के मुख्य अतिथि श्री अनिल कुमार आनंद, निदेशक, रिएक्टर परियोजना वर्ग एवं तकनीकी समन्वय तथा अंतर्राष्ट्रीय वर्ग ने इसे विज्ञान के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण जानकारी देने वाला कार्यक्रम बताया । इस वर्ष के भौतिकी में नोबेल पुरस्कार डॉ. स्टेवन चू, डॉ. विलियम डी. फिलिप्स एवं डॉ. क्लाउडे कोहेन को प्रकाशीय मोलेसेस में परमाणु के शीतलन पर दिया गया । रासायनिकी के क्षेत्र में ए टी पी एंजाइम की आण्विक यांत्रिकी तथा सोडियम पोटेशियम ए टी पी की खोज पर डॉ. पाल बायर, डॉ. जान वाकर, डॉ. जेन्स सी स्काऊ को दिया गया । चिकित्सा विज्ञान में प्रीआन्स की खोज पर डॉ. स्टेनली बी. प्रुसिनर को दिया गया । परिषद डॉ. अहमद, डॉ. जगताप, डॉ. के. पी. मिश्रा, डॉ. के सी भैसा एवं कार्यक्रम के संयोजक डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल की आभारी है ।

वैज्ञानिक संगोष्ठियां एवं कार्यशालाएं :

इस वर्ष (अप्रैल 1997 - मार्च 1998) में एक वैज्ञानिक संगोष्ठी 3-4 सितंबर को गोवा में हुई तथा दूसरी 22-23 सितंबर को भापअ केंद्र में संपन्न हुई । हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद भापअ केंद्र, मुंबई ने हर वर्ष मुंबई से बाहर आयोजित की जाने वाली विज्ञान संगोष्ठियों की परंपरा को बनाये रखते हुए गोवा विश्वविद्यालय तथा राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्थान, गोवा, के साथ मिलकर आर्थिक विकास में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का योगदान शीर्षक विषय पर 3-4 सितंबर 1997 को एक द्वि-दिवसीय संगोष्ठी का आयोजन किया । यह संगोष्ठी राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्थान, गोवा के प्रांगण में संपन्न हुई । जब राष्ट्र स्वतंत्रता की पचासवीं वर्षगांठ मना रहा हो, उस समय राष्ट्र के आर्थिक विकास में भारतीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी कार्यक्रम के योगदान की समीक्षा करना निसंदेह सार्थक है ।

इस संगोष्ठी का उद्घाटन 3 सितंबर 1997 को गोवा सरकार में मुख्य सचिव डॉ. जी. सी. श्रीवास्तव के कर कमलों द्वारा दीप प्रज्वलन के साथ परंपरागत ढंग से संपन्न हुआ । इस अवसर पर पधारे विशेष अतिथि, गोवा विश्वविद्यालय के उपकुलपति डॉ. बी. एस. सोंडे ने आर्थिक विकास में विज्ञान एवं तकनीकी दृष्टि से विकसित संसार के तीन प्रमुख राष्ट्र संयुक्त राज्य अमरीका, जापान तथा कोरिया के सापेक्ष भारत के विज्ञान एवं तकनीकी से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं जैसे मानव संसाधन, समग्र राष्ट्रीय उत्पाद का प्रतिजन निवेश, संचार एवं जानकारी जागरूकता तथा व्यापक आर्थिक स्थान इत्यादि का तुलनात्मक स्वरूप प्रस्तुत किया तथा भारत की शोचनीय स्थिति में सुधार लाने के लिये वैज्ञानिकों से विषेश अनुरोध किया ।

संगोष्ठी में कुल 150 प्रतिभागियों ने भाग लिया। कुल मिलाकर 17 आमंत्रित वार्ताएं तथा लगभग 25 से 30 शोध पत्र पोस्टर सत्र में प्रस्तुत किये गये। गोमांतक, पुढारी गोवा, नव हिंद टाइम्स के अलावा अन्य पत्र-पत्रिकाओं ने भी इस संगोष्ठी की जानकारी जन सामान्य तक पहुंचाने में समुचित भूमिका अदा की। संगोष्ठी के सफलतापूर्वक आयोजन के लिए परिषद संयोजक डॉ. अनिल चटर्जी एवं भापअ केंद्र से संयोजक डॉ. संजीव आर. धारवाडकर के प्रति अपना आभार व्यक्त करती है।

आधुनिक युग में कंप्यूटर :

हिंदी दिवस के उपलक्ष में, "आधुनिक युग में कंप्यूटर" विषय पर 22 सितंबर 1997 को एक कार्यशाला का आयोजन किया। इस कार्यशाला के उद्घाटन समारोह में भापअ केंद्र के नियंत्रक श्री आर. गणेशन ने अपने अध्यक्षीय संबोधन में हिंदी से संबंधित कार्यों के लिए अपना पूरा सहयोग एवं समर्थन देने का वादा किया। डॉ. सी. के. गुप्ता, अध्यक्ष, हिं.वि.सा. परिषद एवं निदेशक, पदार्थ वर्ग भापअ केंद्र ने कार्यशाला का उद्घाटन किया। उन्होंने अपने भाषण में हमारे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र पर कंप्यूटर का प्रभाव पड़ना, इनकी कीमतों में भारी कमी होने के कारण इनका प्रयोग कई क्षेत्रों में संभव हो पाना, आम आदमी का भी इनका प्रयोग कर पाना तथा कंप्यूटरों का हिंदी तथा अन्य प्रादेशिक भाषाओं में काम करने के लिए उपलब्ध हो जाने के बारे में बताया। श्री हरीश कुमार कौरा, अध्यक्ष, कंप्यूटर प्रभाग भापअ केंद्र ने प्रमुख वार्ता प्रस्तुत की। उनकी वार्ता का विषय था "विकास एवं अनुसंधान में कंप्यूटर का महत्व।" उन्होंने कंप्यूटर के क्षेत्र में तेजी से हो रही प्रगति और विज्ञान और इंजीनियरिंग के क्षेत्रों में उनका बढ़ता उपयोग, साथ ही साथ दूसरे क्षेत्रों में लगभग सभी विषयों में कंप्यूटरों के उपयोगों की चर्चा की। इस संगोष्ठी में प्रमुख वार्ता के अतिरिक्त कंप्यूटर संबंधित विषयों पर सात अन्य वार्ताएं प्रस्तुत की गयीं। इस संगोष्ठी में 300 प्रतिभागियों ने भाग लिया। ये सब केंद्र में कार्यरत प्रशासनिक एवं सहायक कर्मचारी थे और इन सबने इस सामायिक एवं महत्वपूर्ण विषय पर सरल भाषा में दी गयी वार्ताओं का भरपूर लाभ उठाया और जानकारी प्राप्त की। कार्यशाला के सफलतापूर्वक आयोजन के लिए परिषद संयोजिका श्रीमती रश्मि रस्तोगी के प्रति अपना आभार व्यक्त करती है।

स्वस्थ जीवन शैली :

हिंदी विज्ञान परिषद, भा.प.अ. केंद्र, मुंबई ने हर वर्ष की भांति केंद्र के सहायक कर्मचारियों लिए 23 सितंबर, 1997 को "स्वस्थ जीवन शैली" विषय पर एक संगोष्ठी का सफलतापूर्वक आयोजन किया। यह संगोष्ठी केंद्र के सेंट्रल कॉम्प्लेक्स सभागृह में संपन्न हुई।

इस संगोष्ठी का ध्येय केंद्र में कार्यरत कर्मचारियों स्वास्थ्य से संबंधित विषयों के बारे में जानकारी प्रदान करना तथा उन्हें नशीले पदार्थों के सेवन से होने वाली हानियों से सावधान करना था। संगोष्ठी के उद्घाटन सत्र में केंद्र के निदेशक श्री अनिल कुमार काकोडकर, पदार्थ वर्ग के निदेशक व परिषद अध्यक्ष डॉ. सी. के गुप्ता, आयुर्विज्ञान प्रभागाध्यक्ष डॉ. बी. जे शंकर, परिषद उपाध्यक्ष श्री रामनिवास आर्य, पदार्थ संसाधन प्रभाग के अध्यक्ष एवं परिषद सचिव डॉ. अशोक कुमार सूरी सहित केंद्र के वरिष्ठ वैज्ञानिक व अधिकारी गण उपस्थित थे। संगोष्ठी में केंद्र के लगभग 300 कर्मचारियों ने भाग लिया।

डॉ. शंकर, डॉ. डी. एन. पाहुआ, डॉ. कौस्तुभ मजुमदार, डॉ. भरत शाह, डॉ. (कुमारी) वैशाली थत्ते आदि विशेषज्ञों ने मानव स्वास्थ्य, संतुलित आहार, मानसिक स्वास्थ्य, तंबाकू, शराब, मादक द्रव्यों आदि के बारे में सरल हिंदी में वार्ताएं प्रस्तुत कीं। संगोष्ठी की संयोजिका डॉ. (श्रीमती) आशा दामोदरन ने मानसिक तनाव से होनेवाली हानियों तथा उससे बचाव के उपायों पर प्रकाश डाला। इस अवसर पर एड्स के बारे में एक फिल्म भी प्रदर्शित की गयी। अंतिम सत्र में डॉ. सैम्युल, डॉ. दामोदरन तथा अन्य विशेषज्ञों ने एक पैनल परिचर्चा के माध्यम से प्रतिभागियों के प्रश्नों का समुचित समाधान किया। इस प्रश्नोत्तर सत्र में प्रतिभागियों की जिज्ञासा, उत्साह और प्रश्नों की विशिष्टता एवं गुणवत्ता ने सिद्ध कर दिया कि यह संगोष्ठी प्रतिभागियों में स्वास्थ्य के प्रति एक संतुलित दृष्टिकोण अपनाने और जागरूकता पैदा करने के अपने उद्देश्य में पूर्णतया सफल रही।

सदस्यता :

इस वर्ष के अंत तक सदस्यों की कुल संख्या 1226 रही जिनमें 1079 आजीवन सदस्य (510 विभागीय तथा 578 अन्य), 115 संस्थागत तथा 32 साधारण सदस्य शामिल थे ।

इस वर्ष परिषद के कार्यक्रम सुचारु रूप से संपन्न हुए और इसमें काफी सफलता मिली तथा इन प्रयासों को सभी ने सराहा । इन सभी कार्यक्रमों की सफलता का श्रेय परिषद के अध्यक्ष श्री अनिल कुमार आनंद तथा उपाध्यक्ष डॉ. अशोक कुमार सूरी के मार्गदर्शक एवं कार्यकारिणी के सभी सदस्यों एवं कार्यक्रमों के संयोजकों तथा उनके सहयोगियों को जाता है । परिषद के भूतपूर्व अध्यक्ष डॉ. सी. के. गुप्ता, उपाध्यक्ष श्री राम निवास आर्य, कोषाध्यक्ष श्री ललित कुमार का परिषद के कार्यों में विशेष सहयोग रहा । परिषद इसके लिए इनका आभार प्रकट करती है । प्रशासनिक एवं वित्तीय सहायता के लिए भापअ केंद्र के नियंत्रक महोदय, आंतरिक वित्तीय सलाहकार, अध्यक्ष, कार्मिक प्रभाग, अध्यक्ष, पुस्तकालय एवं सूचना सेवाएं प्रभाग, राजभाषा अधिकारी व उप स्थापना अधिकारी (मुद्रण) तथा हिंदी कक्ष के प्रति भी हम आभारी हैं । वित्तीय सहायता के लिए हम इंडियन रेअर अर्थ्स, ब्रिट एवं एन. पी. सी. के विशेष रूप से आभारी हैं । हिंदी से जुड़ी दो अन्य संस्थाओं - राजभाषा कार्यान्वय समिति तथा केंद्रीय सचिवालय हिंदी परिषद से भी परिषद को काफी सहयोग मिला है । इसके लिए हम सर्वश्री बी. भट्टाचार्यजी, कु. साधना हेमराजानी एवं डॉ. अशोक ताम्हनकर के विशेष रूप से आभारी हैं ।

राम अवतार अग्रवाल (सचिव)

(संपादकीय : पृष्ठ 4 का शेष भाग)

आर्थिक प्रतिबंधों के परिप्रेक्ष्य में स्वदेशी तकनीक. . .

हालांकि अमरीका जैसे विकसित राष्ट्रों में विज्ञान तथा तकनीकी शोध कार्यों के लिए निजी प्रतिष्ठानों की ओर से प्रोत्साहन तथा अनुदान की परंपरा काफी पुरानी है फिर भी वहां पर इसमें बढ़ोत्तरी की आवश्यकता महसूस की जा रही है । अमरीका की नेशनल एकेडमी ऑफ साइंस के डॉ. बूस. एम. एल्बर्ट का कहना है कि आने वाली सदी में समाज तथा उसमें रहने वाले हर प्राणी के जीवन सुधार में विज्ञान तथा तकनीकी की भूमिका और भी अधिक रहेगी । इस की पूर्ति के लिए अधिक प्रशिक्षित मानव शक्ति (वैज्ञानिक, शिक्षक, इंजीनियर) की आवश्यकता पड़ेगी। अतः इन सबके लिए अधिक फैलोशिप, अनुसंधान अनुदान आदि भी जरुरी होंगे । इस विषय पर अभी से सोचना आवश्यक लगता है ।

जब विकासशील राष्ट्र अपने वैज्ञानिक तथा तकनीकी आधार को मजबूत बनाने की दिशा में कार्य करेंगे और जन साधारण की अधिकांश आवश्यकताओं को अपने सामाजिक परिवेश के अनुकूल पूरा करने में सक्षम हो जायेंगे तो आर्थिक प्रतिबंधों का प्रभाव घटता जायेगा । निजी क्षेत्रों को शोधकार्यों के लिए आकर्षित करने तथा अपने राष्ट्र में उपलब्ध संसाधनों पर आधारित तकनीकों को अपनाने के लिए यह एक सुअवसर समझा जाये तो राष्ट्र के प्रति यह हमारी सबसे अहम् निष्ठा कह लायेगी ।

प्रस्तुत अंक वर्ष 1998 का जुलाई-सितंबर अंक है । इसमें प्रकाशित वार्षिक रिपोर्ट में परिषद की गतिविधियों की जानकारी दी गयी है । इस अंक से प्रकाशित सामग्री पर मानदेय की राशि को बढ़ाने का निश्चय किया गया है। हालांकि एक ओर पाठकों की प्रतिक्रियाओं में बढ़ोत्तरी पायी गयी है, वहीं स्तरीय लेख्र सामग्री में कमी आयी है । पिछले कुछ समय से स्तरीय लेख्रन में काफी अभाव देख्रने में आया है । यह चलन वैज्ञानिक पत्रिकाओं के लिए एक चिंता का विषय बन गया है । कृपया स्तरीय तथा सारगर्भित लेख्र सामग्री प्रेषित करें और हिंदी में विज्ञान साहित्य सृजन तथा उसे जन साधारण तक पहुंचाने के कार्य में हमारा सहयोग करें ।

— डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल

कुछ फूल : कुछ कांटे

इसमें संदेह नहीं कि वैज्ञानिक आज भी विश्व की सबसे श्रेष्ठ विज्ञान-पत्रिका है। इसकी सामग्री, रूप-सज्जा सभी उत्कृष्ट है। फिर भी ऐसा लगता है कि आज की युवा पीढ़ी में विज्ञान-लेखन के प्रति उतना उत्साह नहीं, जितना इस पत्रिका को लॉंच करने वाले दिनों में था। कारण ढूंढ़ें तो ज्यादा प्रयास नहीं करना पड़ेगा। आज फोकस विज्ञान पर इतना नहीं जितना अर्थशास्त्र, प्रबंधन / मार्केटिंग व अंतर्राष्ट्रीय व्यापार आदि मुद्दों पर है। फिर भी विज्ञान के बिना ये सभी अधूरे हैं। अतः आप अपना कार्य उत्साह से करते रहें, यही निवेदन है।

हाँ, पत्रिका में थोड़ा हास्य-व्यंग का समावेश भी होना चाहिए। वैज्ञानिकों और विज्ञान के लतीफे, कार्टून आदि भी पत्रिका में शामिल किये जायें तो अच्छा है। साथ ही विज्ञान की नवीनतम खोजों की कम से कम संक्षिप्त जानकारी जरूर होनी चाहिए यद्यपि इतनी सारी खोजों का समावेश कठिन कार्य तो है। यह कैसे हो, कृपया इस पर विचार करें। अब 20 वीं सदी की खोजों पर एक विहंगम दृष्टि भी जरूरी हो गयी है और 21 वीं सदी के विज्ञान और उससे जुड़े जीवन की एक झलक पेश करना भी अपेक्षित है आप से। 21 वीं सदी शुरु होते ही सूरज की किरणें पहले किस देश पर पड़ेंगी, Y2K के कारण क्या वाकई विनाशकारी घटनाएं होंगी, क्या यह सदी अंतरिक्ष की ऊंचाई के बजाय जल की गहराइयों की खोज-बीन की सदी होगी, क्या पृथ्वीतर मानवों से सामना होने की संभावना है, आदि-आदि कई प्रश्नों के उत्तर हमें अपने पाठकों को देना है, यह ज़िम्मेदारी आप पर है।

22-8-98 **डॉ. देवकीनंदन**

ए-304 बी, हृषीकेष, स्वामी समर्थ नगर,
अंधेरी (प), मुंबई - 400 053.

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद का आजीवन सदस्य होने के नाते स्तरीय हिंदी पत्रिका वैज्ञानिक नियमित रूप से प्राप्त हो रही है, इसके लिए धन्यवाद! प्रतियोगिता विषेशांक के सभी लेख रोचक एवं स्तरीय लगे।

28-10-98 **संजीव कुमार गोयल**

वैज्ञानिक, नीरी, नेहरू मार्ग, नागपुर - 440 020

आपके द्वारा भेजी गयी वैज्ञानिक की प्रति सहर्ष प्राप्त हुई। विज्ञान से संबंधित रोचक जानकारी निहित पत्रिका, निसंदेह जन समूह को विज्ञान के नवीनतम विकास का अवलोकन कराती है।

04-11-98 **नारेंद्र सिंह राठौर**

बी.ए.आर.सी., प्रिफ्री संयत्र, तारापुर

वैज्ञानिक की प्रति प्राप्त हुई, पत्रिका में प्रकाशित सामग्री एवं छपाई उच्च कोटि की है और इस संदर्भ में भा.प.अ. केंद्र एवं आप सभी का प्रयास सराहनीय है। आशा है कि पत्रिका हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद के निर्धारित लक्ष्यों की ओर निरंतर अग्रसर रहेगी। वास्तव में हिंदी भाषा के लेखों विशेषतः वैज्ञानिक लेखन में स्तरीय सामग्री एवं पत्रिकाओं की कमी है।

वैज्ञानिक के प्रबंधन एवं संपादन मंडल को इस हेतु साधुवाद प्रेषित है।

भविष्य में भी उच्चस्तर बनाये रखें।

कु. विजया तिवारी

द्वारा राम प्रताप तिवारी, भारतीय लाख
अनुसंधान संस्था, नामकुम, रांची - 834010.

बाल-विज्ञान में प्रस्तुत "शीले की भर्तीजी" क्लोरीन लेख (जनवरी - जून, 1998) ने एक बार पुनः कलम उठाने को मजबूर किया। वाकई डॉ. डी. डी. ओझा ने बहुत ही सरल ढंग से क्लोरीन के विभिन्न आयामों को दर्शाया है जिसमें गूढ़ता भी है और सरलता भी। इनका प्रयास बाल सभाओं के बीच अवश्य ही अमिट छाप छोड़ेगा। इस अंक के सभी लेख पठनीय एवं प्रस्तुत तथ्य संग्रहनीय हैं। क्लोनिंग से संबंधित लेख ने एक बार पुनः हमारे दिमाग में बहुत सारे सवाल पैदा कर दिये हैं जिन पर वैज्ञानिक तथा सामाजिक बहस होना बहुत जरूरी है। 'ज्वार-भाटा से बिजली' लेख सराहनीय है क्योंकि इसके जरिए हम लोगों को एक ऐसे गैर पारंपरिक ऊर्जा के स्रोत से अवगत कराया गया है जिसकी भारत में काफी संभावना नजर आ रही है। 'मंगल अभियान : कुछ उपलब्धियां' में प्रकाशित चित्र काफी जानकारी युक्त हैं। इस लेख द्वारा हमें मंगल ग्रह की ऊबड़-खाबड़ सतह को देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। 'मुक्त-इलेक्ट्रॉन लेजर' लेख भी काफी अच्छा लगा।

अन्य लेख भी उत्कृष्ट हैं।

आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि वैज्ञानिक का हर अंक हमें ऐसे ही रोचक और ज्ञानवर्धक लेखों से अवगत कराता रहेगा।

27-11-98

कृषिचयन,
एम. एस. सी. (भौतिक विज्ञान),
डॉ. चतुर्भुज साहु, रीडर एवं विभागाध्यक्ष,
मानव विज्ञान विभाग, गिरिडीह कॉलेज
गिरिडीह - 815 301

आपके पत्र दि. 20-10-98 के साथ वैज्ञानिक का जन.-जून 98 अंक भी प्राप्त हुआ। आपने इस अंक के संपादकीय में, 'विशुद्ध परमाणु संलयन ऊर्जा : 21 वीं सदी का लक्ष्य' पर सार्थक व सारगर्भित प्रकाश डाला है। इसका कुछ अंश मैंने बी. बी. सी. की एक विज्ञान चर्चा में सुना था। यदि भारत सरकार के सक्षम अधिकारी व राजनेता इस अंक पर दृष्टिपात करें तो सी.टी.बी.टी वार्ता के लिए भी सामग्री मिल सकती है। इस अंक के दो निबंध, 'जेनेटिक क्लोनिंग : वरदान या अभिशाप', तथा 'पेयजल में विषाणु कार्बनिक पदार्थों का मूल्यांकन' मेरा ध्यान आकर्षित करते हैं। वैसे सभी निबंधों की अपनी अपनी खासियतें कम नहीं हैं। कितना अच्छा हो यदि NCERT की जगह आपका संस्थान प्राथमिक कक्षाओं की विज्ञान पुस्तकें बनाये।

14-11-98

रामगोपाल परिहार
हिंदी विभागाध्यक्ष, जे.एन.वी., बिरखड़ी,
भिंड - 477335

वैज्ञानिक पत्रिका का जनवरी-जून 1998 मिला पढ़कर काफी रोचक और ज्ञानवर्धक जानकारी मिली। यह पत्रिका पाठकों को विज्ञान के हर नये-पुराने आयाम से परिचित कराती है, और संपूर्ण जानकारी देती है। विज्ञान के क्षेत्र में आपकी पत्रिका काफी सफल है।

"विशुद्ध परमाणु ऊर्जा संलयन ऊर्जा" लेख से काफी अच्छी जानकारी हासिल हुई। पोखरण परीक्षण पर मैं अपने पत्र के माध्यम से पूरे बी.ए.आर.सी. को हार्दिक बधाई देता हूँ।

हमें "जेनेटिंग क्लोनिंग"लेख काफी रोचक लगा। मैं डॉ. कृष्ण कुमार मिश्रा को बहुत धन्यवाद देना चाहता हूँ जिन्होंने अपने लेख द्वारा कई पाठकों को लाभांवित किया। इस लेख को पढ़कर गर्व महसूस होता है कि वैज्ञानिकों ने विज्ञान को इस बुलंदी तक पहुँचा दिया है। मेरा मानना है कि यदि वैज्ञानिक 'मानव-क्लोन' बनाने की सोच रहा है तो बनेगा जरूर भले प्रतिबंधित स्थान से हटकर बने। वैसे यदि इतनी मेहनत है तो इस क्लोन का दुरुपयोग कोई नहीं करेगा और हम यह कामना करते हैं कि यह क्लोन हमारे भारतीय वैज्ञानिक बनायें। पोखरण इसका ज्वलन्त उदाहरण है। मेरी राय में, भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र में संबंधित वैज्ञानिकों को बुलाकर कुछ ऐसे पदक अवश्य प्रदान करें जिससे पुरस्कार प्राप्त कर्ता अपने को गौरांवित महसूस करे।

आपकी पत्रिका निरंतर सफलता के मार्ग पर चले, यही हमारी मनोकामना है।

6-11-98

राजर्षि मिश्रा
551 KA/188 ओम नगर,
आलम बाग, लखनऊ - 226 005

वैज्ञानिक का जनवरी-जून 1998 संयुक्तांक आज प्राप्त हुआ। हार्दिक धन्यवाद। पत्रिका को एक ही बैठक में देख गया। सभी लेख तो मेरी रुचि और कार्यक्षेत्र से संबंधित नहीं हैं, लेकिन विशेषज्ञों के अलावा सामान्य पाठक के पढ़ने लायक इसमें काफी सामग्री रहती है। कुछ लोगों को गलतफहमी हो सकती है कि यह परमाणु विज्ञान की ही पत्रिका है, अतः सामान्य रुचि की सामग्री इसमें नहीं होगी, कुछ लोग इसे विज्ञान की पत्रिका मानते होंगे, और चूँकि इस धमप्रयाण देश में विज्ञान को सीमित लोगों की रहस्यमय चीज माना जाता है, इसलिए वे लोग, इस पत्रिका को छूकर देखने-पढ़ने का कष्ट गँवारा नहीं करते। असल में इस देश में ज्ञान-विज्ञान को सामान्य जन के जीवन से काट दिया गया है, इसलिए यहाँ इतना अधिक पिछड़ापन, अंधविश्वास और अज्ञानता है। जनता में वैज्ञानिक चेतना फैलाने के लिए 'वैज्ञानिक' जैसी पत्रिकाओं का बहुत बड़ा योगदान है। विज्ञान प्रत्येक व्यक्ति के जीवन को प्रभावित करता है। विज्ञान पर इस देश में सैकड़ों पत्रिकाओं को छपना चाहिए। जरूरत है अच्छे विज्ञान लेखकों और पत्रकारों की।

विज्ञान लेख प्रतियोगिता का दूसरी पत्रिकाओं, अखबारों, दूरदर्शन आदि से भी प्रचार होना चाहिए।

28-10-98

एक पाठक

विकिरण समस्थानिक [रेडियोआइसोटोप]

वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकीय प्रगति हेतु अनिवार्य साधन

विकिरण एवं आइसोटोप प्रौद्योगिकी बोर्ड (बी आर आई टी) ने देश में विविध रेडियो उत्पादों की बढ़ती हुई मांग को पूरा करने में स्वयं को पूर्णतया समर्पित किया है। रेडियोआइसोटोप के उत्पादन एवं अनुप्रयोग हेतु इस क्षेत्र में अनुसंधान की कुछ उत्कृष्ट सुविधाएं ट्रॉंबे में स्थापित की गयी हैं। स्वदेशी अनुसंधान एवं विकास कार्यों पर निर्भर रहते हुए 'ब्रिट' (बी आर आई टी) ने रेडियो आइसोटोप उत्पादों का विस्तृत रूप से विकास किया है एवं देश - विदेश के 1000 से भी अधिक संगठनों की आवश्यकताओं की आपूर्ति की है।

कुछ महत्वपूर्ण उत्पाद एवं सेवाएं इस प्रकार हैं :

- **विकिरण भेषज (रेडियोफार्मास्युटिकल्स) :**
  विभिन्न प्रकार के रोगों के निदान एवं थायराइड रोगों के उपचार हेतु।
- **विकिरण प्रतिरक्षा आमापन (रेडियो इम्यूनो ऐसे) किट्स :**
  हार्मोन्स तथा औषधियों की सूक्ष्म मात्रा के आकलन हेतु।
- **रेडियोस्सायन एवं विकिरण स्रोत :**
  अनुसंधान, औद्योगिक अनुप्रयोगों एवं कैन्सर रोगोपचार हेतु।
- **रेडियोग्राफी कैमरे एवं उपसाधन :**
  सांचों तथा वेल्डों के रेडियोग्राफिक निरीक्षण हेतु।
- **गामा किरणन उपस्कर :**
  चिकित्सा उत्पादों के विकिरण निर्जर्मीकरण या खाद्य किरणन हेतु।
- **विकिरण निर्जर्मीकरण सेवा :**
  प्रयोज्य चिकित्सा उत्पादों जैसे, आई. सैट, वी. कैथीटर (मूत्रनलिका), जाली का कपड़ा, ग्लव्ज, शल्य ब्लेड, दस्तानें, रिक्त पात्र आदि के विकिरण निर्जर्मीकरण हेतु।

कृपया अधिक जानकारी हेतु सम्पर्क करें :

वरिष्ठ प्रबंधक एवं विपणन संचालन प्रभारी,

विकिरण एवं आइसोटोप प्रौद्योगिकी बोर्ड (बी आर आई टी)

वि. ना. पुरव मार्ग, देवनार, बम्बई - 400 094.

टेलीफोन : 555 1676/555 3145

तार : ब्रिट एटम, बम्बई - 94, टेलेक्स : 011 72212 ब्रिट इन

With Best Compliments from

INDIAN RARE EARTHS LTD.

Offers the following products :

Beach Sand Minerals

Ilmenite (TiO_2 : 60%, 55% & 50%)
Natural Rutile
Zircon/Zircon Flour
Granular Silimanite (-65 to + 100 Mesh)
Garnet
Leucoxene and
Synthetic Rutile

Rare Earths

Rare Earths Chloride
(original and heavies-lean)
Rare Earths Fluoride
Rare Earths Oxide
Cerium Oxide/cerium Hydrate
Didymium Carbonate
Samarium/Yttrium/Gadolinium/Europium
Concentrates (Individual and Mixed)

Particular attention of Interested buyers/users is drawn to the following products available at ver attractive prices :

Synthetic Rutile (93% TiO_2)
Ilmenite : MK Grade (55% TiO_2 Min.)
Zircon (65% ZrO_2 with max 0.2% TiO_2 and 0.1 Fe_2O_3)
Granular Silimanite (Min. 59% Al_2O_3)
Samarium Oxide (96%)

For futher details, please contact :

The Chief General Manager (Mktg.)
Indian Rare Earths Ltd.
Sherbanoo, 6th Floor, 111, Maharshi Karve Road,
Churchgate, Mumbai - 400 020. INDIA
Tel. : (022) 209 6800, 203 0915 # Fax : (022) 200 4430
Tlx. : (11) 83122, 83254 # Cable : RAREARTH, BOMBAY, INDIA

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद के लिए डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल द्वारा संपादित तथा श्री गोरा चक्रवर्ती द्वारा प्रिंट शॉप, चेंबूर, मुंबई (फोन : 555 2348 / 556 5279) में मुद्रित व प्रकाशित।

दिल्ली, नयी दिल्ली, महाराष्ट्र, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान व उ. प्र. के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूल व कॉलेजों के लिए स्वीकृत ।

भारत सरकार
परमाणु ऊर्जा विभाग

नाभिकीय ईंधन सम्मिश्र

हैदराबाद - 500 062

निम्नलिखित पदार्थों का वाणिज्यिक स्तर पर निर्माण एवं उनकी आपूर्ति की जाती है :-

संधिरहित जंगरोधी इस्पात नलिकाएं / पाइप

रसायन, उर्वरक, धातुकीय, पेट्रोरसायन, तेलशोधक, नाभिकीय तथा विद्युत उत्पादन के उद्योगों के लिए एएसटीएम ए 312/213/269 के अनुसार ऑस्टेनिटिक स्तर की नालिका/पाइप का तीसरे पक्ष/ एन. एफ. सी. द्वारा निरीक्षण ।

ठेके का कार्य

ग्राहकों द्वारा कच्चे माल दिये जाने पर कुप्रोनिकल, टाइटेनियम और अन्य फेरस व अ-फेरस श्रेणियों को वहिर्वेधन/शीत वेल्लन की बेयरिंग इस्पात नलिकाओं में बदलने के लिए काम स्वीकारे जाते हैं ।

अतिउच्च शुद्धता के विशेष पदार्थ

इलेक्ट्रॉनिक उद्योग के लिए 99.999% शुद्धता के एंटीमनी, बिस्मथ, इंडियम, कैडमियम, जिंक, स्वर्ण, स्वर्ण पोटैशियम साइनाइड आदि की आपूर्ति ।

फोटोकॉपी के लिए अति उच्च शुद्धता के सेलेनियम व टेल्युरियम, इलेक्ट्रॉनिक वल्ब के निर्माण के लिए जर्कोनियम चूर्ण, रसायन और उर्वरक उद्योगों के लिए टेंटालम चादरों तथा छड़ों और संविरचित पदार्थों की आपूर्ति ।

अपनी सभी आवश्यकताओं के लिए लिखें :

विपणन प्रबंधक,

नाभिकीय ईंधन सम्मिश्र

पोस्ट : इ. सी. आई. एल., हैदराबाद 500 062.

● दूरभाष : 7120151 विस्तार (4224) ● (सीधे) 7121239

● टेलेक्स : 0425-7004 ● ग्राम : "एनयूसीएफयूइएल"

● फैक्स : 040-7121209, 7121305

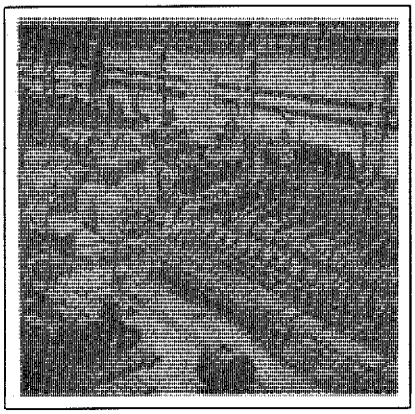

क्षैतिज बहिर्वेधन दाव से

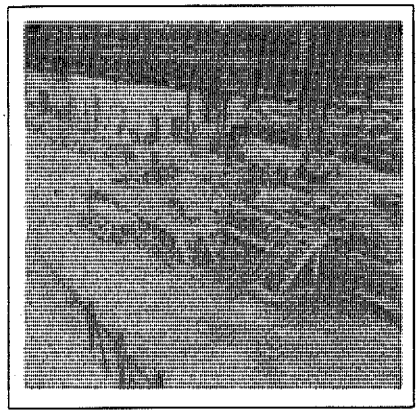

शीत पिल्गरन मिल

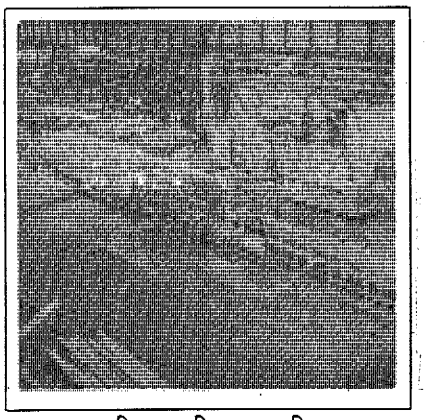

दीप्त अनीलन भट्टी

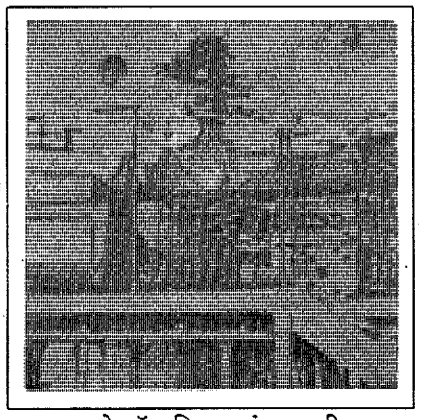

इलेक्ट्रॉन किरण पुंज भट्टी